चैतन्य का स्मरण प्रतिक्षण ही करो रे !
भव के अनन्त दुःख को पल में हरो रे !
अक्षय अनंत निज सौख्य निधान पावो,
गाओ अरे ! नित इसी के गीत गाओ।।

प्रकाशक :
अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन
शाखा-कोटा, (राज.)

चैतन्य वाटिका

'युगल' जैन

चैतन्य वाटिका

'युगल' जैन

जुगल किशोर 'युगल'
जन्मः 5 अप्रेल 1924
खुरी,जिला-बारां, (राज.)
शिक्षाः
एम.ए.,साहित्यरत्न
पताः
85, आर्य समाज गली,
रामपुरा, कोटा-324006

ख्यातिप्राप्त दार्शनिक विद्वान श्री जुगलकिशोर 'युगल' को प्रसिद्ध देव-शास्त्र-गुरु पूजा लिखने के कारण समाज में वही स्थान प्राप्त है जो हिन्दी साहित्य में 'उसने कहा था' कहानी के लेखक पण्डित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' को। 'युगल' जी उच्चकोटि के कवि, लेखक एवं ओजस्वी वक्ता हैं। 15 वर्ष की अल्पवय में ही आप में काव्य-प्रसून अंकुरित होने लगे थे। तब राष्ट्रीय चेतना एवं स्वतन्त्रता-संग्राम का युग था। युग के प्रवाह में इनकी काव्यधारा राष्ट्रीय रचनाओं से प्रारम्भ हुई। पारम्परिक धार्मिक संस्कार तो आप में बचपन से ही थे किन्तु उन्हें सम्यक् दिशा मिली इस युग के आध्यात्मिक क्रान्ति स्रष्टा श्री कानजीस्वामी से। स्वयं श्री 'युगल' जी के शब्दों में- 'गुरुदेव से ही मुझे जीवन एवं जीवनपथ मिला है।' युगलजी दर्शन को जीवन का समग्र स्वरुप मानते हैं और दर्शन की सर्वांग क्रियान्विति चैतन्य के साक्षात्कार में स्थापित करते हैं-

जो चेतन के भीतर झाँका, उसने जीवन देखा
बाकी ने तो खींची रे! परितप्त तटों पर रेखा

जनमानस में जैन दर्शन का साधारणीकरण आपके काव्य का मूल लक्ष्य है।

आप सफल गद्य एवं नाट्य-लेखक भी हैं। 'युगल' जी अखिल भारतीय स्तर के प्रवचनकार हैं और उनकी उपस्थिति धार्मिक आयोजनों का महत्त्वपूर्ण आकर्षण मानी जाती है।

" हे विश्व कवि मैं तुमको क्या अर्पण कर दूं
मेरी क्या हस्ती है, जो तुमको तर्पण कर दूं
तुम हो सूर्य गगन के, मैं कण माटी का
तुम ही सागर ज्ञान सिन्धु, मैं एक बिन्दु सा"

रुप सज्जाः नन्दन,कोटा फोनः 361501

चैतन्य वाटिका

(काव्य संग्रह)

बाबू जुगलकिशोर जैन 'युगल'
एम.ए., साहित्यरत्न

कोटा

आर्हत् साहित्य निधि 'द्वितीय पुष्प'

प्रथमावृत्ति : 2100
ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी, दिनांक 23 जून, 2002
(जैन दर्शन एवं व्यक्तित्व विकास शिविर के पावन अवसर पर)

© प्रकाशकाधीन

मूल्य : बीस रूपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

* **अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन**
  द्वारा-स्वास्तिक स्टेशनर्स एवं बुक सेलर
  रामपुरा बाजार, कोटा दूरभाष: 325524, 327809
* **पण्डित टोडरमल स्मारक भवन**
  ए-4, बापूनगर, जयपुर (राज.)
* **श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, कोटा**
  श्री पोरवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, जैन गली
  रामपुरा, कोटा
* **आचार्य कुन्दकुन्द शिक्षण संस्थान ट्रस्ट**
  ए.304, पूनमअपार्टमेन्ट, वरली, मुम्बई-18

लेजर टाइप सेटिंग :	**मुद्रक :**
अजय कुमार गुप्ता	ज्योति प्रिन्टिंग प्रेस
वेव कम्प्यूटर एवं प्रिन्टर,	रामपुरा बाज़ार
गोरधनपुरा, कोटा-7	कोटा

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन
कोटा (राज.)

सम्पादक :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियां, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

संकलन एवं संयोजन :
अजेय जैन, सी.ए.,कोटा

सम्पादक मंडल :
सुशीलकुमार जैन
ब्र.नीलिमा जैन
चिन्मय जैन

★ साहित्य प्रकाशन हेतु सहयोग राशि प्रदाता ★

1.	गुप्तदान ह.कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान	21000/–
2.	श्री अरिदमन लालजी सा. कोटा परिवार द्वारा	11000/–
3.	गुप्तदान ह. कमलजी बोहरा, कोटा	11000/–
4.	स्व. श्री रामचन्द्रजी हरिशंकरजी दुगेरिया की स्मृति में	5001/–
5.	श्री जयकुमार जी जैन सा., दादाबाड़ी कोटा	5000/–
6.	श्री गम्भीरमलजी धनोप्या, विज्ञाननगर, कोटा	5000/–
7.	श्रीमति शान्तिदेवी जैन धर्मपत्नि श्री उत्सवचन्द जी बगड़ा	5000/–
8.	श्रीमति रजनी जैन धर्मपत्नि श्री सुरेन्द्रकुमार जी जैन	5000/–
9.	श्रीमति घीसीबाई धर्मपत्नि श्री राजमलजी भिण्डीवाले	5000/–
10.	श्री खानसिंह जी, इन्द्राविहार, कोटा	3100/–
11.	डॉ.श्री मानमल जी जैन, बल्लभबाड़ी, कोटा	1111/–
12.	श्री चौथमल जी जैन, बल्लभनगर, कोटा	1111/–
13.	श्री मूलचन्द दिनेशकुमार ठाई, दीपपुरा वाले, कोटा	1111/–
14.	श्रीमति लीला जैन धर्मपत्नि श्री तेजमलजी जैन, डाबीवाले	1100/–
15.	श्रीमति आशा जैन धर्मपत्नि श्री लाभचन्दजी, डाबीवाले	1100/–
16.	श्रीमति लाली जैन धर्मपत्नि श्री महावीरप्रसादजी,डाबीवाले	1100/–
17.	श्रीमति कविता जैन धर्मपत्नि श्री कैलाशचन्दजी, डाबीवाले	1100/–
18.	श्रीमति अर्चना जैन धर्मपत्नि श्री अनिलकुमारजी डाबीवाले	1100/–

प्रकाशकीय

आर्हत् साहित्य निधि के दूसरे पुष्प के रूप में आदरणीय बाबू 'युगल जी' की पद्य रचनाओं का संकलन **"चैतन्य वाटिका"** अध्यात्म रसिक भव्य जीवों को सादर समर्पित है। देव–शास्त्र–गुरु एवं सिद्धपूजन आपकी कालजयी रचनायें हैं, जो हजारों जिन भक्तों को कण्ठस्थ हैं। स्वान्तः सुखाय लिखी गई आपकी पद्य रचनाओं को संकलित कर प्रकाशित करने के अनेक प्रयत्न पूर्व में भी हुए, पर पूर्णता तक नहीं पहुँच पाये। अत्यन्त हर्ष और गर्व है कि मुमुक्षु जनों की इस चिर अभिलाषा को पूरा करने का प्रयास जैन युवा फेडरेशन कोटा के माध्यम से सफलीभूत हो रहा है।

साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक काल में आपकी रचनायें बहुआयामी रहीं, परन्तु पूज्य गुरुदेव श्रीकानजी स्वामी से तत्वबोध प्राप्त होने के पश्चात् उनकी सभी रचनायें शुद्ध चैतन्य की सुवास से सुवासित हैं। इस संकलन में केवल कुछ रचनायें प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन का सृजन है, शेष सभी उनके अध्यात्म निष्णात्त जीवन की उपलब्धियाँ हैं। अतः सभी रचनायें **'चैतन्य'** की धुन से आप्लावित हैं। जहाँ उन्होंने जैन तत्वज्ञान के रहस्यों को अपनी रचनाओं के माध्यम से उद्घाटित किया है, वहीं प्रौढ़ साहित्यिक कृतियों का अवदान भी समाज को दिया है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह कृति न केवल जैन साहित्य वरन् सम्पूर्ण हिन्दी काव्य साहित्य में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करेगी।

जैन युवा फेडरेशन एवं हमारी सहयोगी संस्थायें दिगम्बर जैन मुमुक्ष मंडल कोटा एवं कुन्दकुन्द शिक्षण केन्द्र ट्रस्ट कोटा आदरणीय बाबूजी के हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने इस ग्रन्थ को

प्रकाशित करने की स्वीकृति सहर्ष प्रदान की एवं साथ ही इसके सुव्यवस्थित प्रकाशन में समय-समय पर अमूल्य मार्ग दर्शन प्रदान किया।

'चैतन्य वाटिका' के रूप में बाबू जी की पद्यात्मक रचनाओं के संकलन की परिकल्पना और संकलन एवं संयोजन का श्रम साध्य कार्य हमारे युवा साथी श्री अजेय जैन चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट के अथक प्रयासों से ही एक माह के अल्पसमय में सम्पन्न हो पाया। पं० देवेन्द्र कुमार जी बिजौलियाँ ने इसके सम्पादन का दायित्व ग्रहण कर हमें अनुग्रहीत किया, उसके लिए हम व्यक्तिगत रूप से उनके और आचार्य कुन्दकुन्द शिक्षण संस्थान ट्रस्ट, मुम्बई के आभारी हैं। पं० देवेन्द्र कुमार जी बिजौलियाँ अध्यात्म के प्रख्यात विद्वान व प्रवचनकार हैं, उन्होंने पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों के हिन्दी अनुवाद व सम्पादन का श्रम साध्यकार्य भी सम्भाला हुआ है।

सामग्री के संकलन एवं यथा सम्भव शुद्ध मुद्रण के कार्य में ब्र.नीलिमा जैन, प्राध्यापक श्री सुशील कुमार जैन, प्रो. श्री सन्तोष कुमार जैन एवं श्री चिन्मय जैन का महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

जैनदर्शन एवं व्यक्तित्व विकास शिविर के मंगलप्रसंग पर इस कृति के प्रकाशन की प्रेरणा और वित्तीय साधन जुटाने के भार से हमें मुक्त रखने के लिए हम कुन्दकुन्द शिक्षण केन्द्र ट्रस्ट और दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल कोटा के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। इस ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना मुमुक्षु समाज के समक्ष रखते ही तत्काल कम से कम मूल्य पर इसे उपलब्ध कराने हेतु आर्थिक सहयोग के वचन प्राप्त होने लगे सहयोग कर्त्ताओं की सूची पुस्तक के अन्त में प्रकाशित की जा रही है। हम उन सभी सहयोग कर्त्ताओं के आभारी हैं।

आदरणीय बाबूजी का चिन्तन व लेखन अत्यन्त गहन है, अल्पज्ञता के कारण कोई मुद्रण सम्बन्धी अशुद्धि रही हो तो हम उसके लिए क्षमाप्रार्थी हैं।

इस ग्रन्थ की सुन्दर एवं शुद्ध लेजर टाइप सेटिंग का कार्य श्री अजय जी गुप्ता मैसर्स वेव कम्प्यूटर कोटा द्वारा किया गया है एवं सुन्दर मुद्रण का श्रेय ज्योति प्रिन्टिंग प्रेस, कोटा को जाता है।

इनके अतिरिक्त इस मंगलकार्य में प्रत्यक्ष एवं परोक्षरूप में सहयोग करने वाले सभी सज्जनों के प्रति हम हृदय से आभारी हैं। विशेष रूप से हम श्री ज्ञानचन्द जी जैन अध्यक्ष दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल कोटा के आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में समय-समय पर विशेष सहयोग प्रदान किया।

आदरणीय बाबूजी के गहन एवं स्पष्ट चिन्तन की इस काव्यधारा में अवगाहन कर अधिकाधिक जिज्ञासु अपना जीवन आनन्दमय बनायें इसी मंगल भावना के साथ प्रस्तुत प्रकाशन पाठकों को समर्पित है.........

दिनांक 23 जून, 2002

जिनेन्द्र कुमार जैन
मंत्री
अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन
शाखा-कोटा (राज.)

सम्पादकीय

अध्यात्म मनीषी बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल', कोटा से सम्पूर्ण तत्वप्रेमी समाज सुपरिचित है। 'केवल रवि किरणों से ......' जैसी अलभ्य काव्यकृति के प्रणेता आदरणीय 'बाबूजी' सचमुच अध्यात्म जगत की एक निधि हैं, जिनसे अध्यात्म जगत गौरवान्वित है। स्वभाव से अत्यन्त कोमल, किन्तु सिद्धान्तों के प्रति अचलमेरु सम व्यक्तित्व के धनी बाबूजी जैन तत्वज्ञान के गहन चिन्तक, सफल काव्यविद्, ओजस्वी प्रवचनकार एवं वात्सल्य से ओत-प्रोत महान् तत्वज्ञ हैं। अत्यन्त सरल किन्तु सुदृढ़ साहित्यिक भाषा में जैन तत्वज्ञान का विवेचन/ लेखन आपकी मौलिक विशेषता है जो श्रोता/पाठक के हृदय में व्याप्त चिर अज्ञानतम की परतों को उधेड़ते हुए उसे शुद्ध चिद्रूप की मंगलमय अनुभूति के सुरम्य आलोक से आलोकित करने में सक्षम है। अध्यात्म जैसा रूक्ष विषय भी आपकी वाणी/लेखनी का सहचार पाकर मधुर अमृत के समान बनकर चैतन्य परिणति को परितृप्त कर देता है।

आप इस युग के सर्वश्रेष्ठ अध्यात्म वेत्ता चैतन्य विहारी पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के अनन्यतम शिष्य हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पूज्य गुरुदेवश्री के तत्वज्ञान का एक-एक सूत्र आज आपके अन्तस्तल में जीवंत है और अध्यात्म पिपासुओं को गुरुदेव श्री के विरह का आभास नहीं होने देता है। आप गुरुदेवश्री को जीवन और जीवन पथ प्रदाता मानते हैं। स्वयं आपके शब्दों में 'गुरुदेव से ही मुझे जीवन और जीवन पथ मिला है।' तथा

"श्री कानजीस्वामी इस युग के एक शुद्ध आध्यात्मिक क्रान्तिदृष्टा पुरुष हैं। उन्होंने जिस क्रान्ति का सूत्रपात किया, ऐसी क्रान्ति पहिले शताब्दियों में भी नहीं हुई। जैन-लोक-जीवन की श्वासें, रूढ़ि, अन्धविश्वास, पाखंड एवं कोरे कर्मकांड की कारा में घुट रही थीं। इसके आगे धर्म कोई वस्तु ही नहीं रह गया था। इन महापुरुष ने शुद्ध जिनागम का मन्थन कर इन जीवन-विरोधी तत्त्वों को अधर्म घोषित किया और इस निकृष्ट युग में शुद्ध आत्म-धर्म की प्राण-प्रतिष्ठा की।" (1)

"सौराष्ट्र के सन्त ने भव के अन्त के लिए 'ध्रुव' का यह मंगलसूत्र लोक को दिया। उन्होंने सम्यग्दर्शन के जिस स्वरूप का अनुसंधान किया वह इस युग का एक आश्चर्य है। सम्यग्दर्शन के इस सूक्ष्म एवं अद्भुतस्वरूप का इस युग को स्वप्न भी नहीं था। वास्तव में श्री कानजीस्वामी इस युग में सम्यग्दर्शन के आविष्कर्त्ता हैं और यह भवान्तक सम्यग्दर्शन इस युग को उनका सबसे महान वरदान है। उसके स्वरूप का बोध उनके बिना सम्भवित नहीं था।" (2)

लोकेषणा से दूर आपका सहज, सरल एवं निश्छल व्यक्तित्व; साधर्मी वात्सल्य, विषमतम परिस्थितियों में दूरदर्शी निर्णय की क्षमता, अध्यात्म के साथ-साथ भक्तिरस से अभिसिंचित हृदय, विलासितामुक्त जीवनचर्या, असीम शारीरिक स्वास्थ्य की प्रतिकूलता के मध्य भी तत्वज्ञान की अविराम चिंतनधारा आपके जीवन की अनुकरणीय विशेषतायें हैं।

आपका लेखन बहुआयामी है। आपने जहाँ अध्यात्म के उत्कर्ष को स्पर्श किया है वहीं भक्तिरस एवं सदाचार भी आपकी लेखनी व वाणी में अछूते नहीं रहे हैं।

यद्यपि आप अध्यात्म को जीवन प्राण-जीवन तत्व मानते हैं; तथापि अध्यात्म का अतिरेक आपको सह्य नहीं है। अध्यात्म के अतिरेक में जिनभक्ति की पावन परम्पराओं में समागत विकृतियों एवं दूषित आचार प्रवृत्ति के आप कट्टर विरोधी हैं।

---

(1) 'चैतन्य विहार' पृष्ट -13, (2) 'चैतन्य विहार' पृष्ट -38

आप तत्वज्ञान को एक अनूठी जीवन-कला मानते हैं और उसे ही जीवन का मूलाधार भी, स्वयं आपके शब्दों में

"तत्व-ज्ञान सर्व समस्याओं के समाधान की एक अद्भुत जीवन कला है। वही जीवन का सर्व प्रथम कर्म और सर्वप्रथम धर्म है। उसके बिना जीवन असीम वैभव के बीच भी दरिद्री और अशांत है और उसके प्रादुर्भाव में सर्व जागतिक वैभव के बिना भी वह अकेला ही परमेश्वर है।" (3)

आपकी लेखनी से प्रसूत काव्यधारा में अध्यात्म, दर्शन, भक्ति, वैराग्य एवं लोक मांगल्य के विविध पुष्प विकसित हुए हैं।

जहाँ आपने अध्यात्म के उत्कृष्ट ग्रन्थ श्री नियमसार का पद्यानुवाद किया है वहीं नीरवनिर्झर तथा अमूल्य तत्वविचार जैसी अनुप्रेक्षणीय कृतियों का सृजन भी आपके द्वारा हुआ है।

अपने जीवन-प्राण पूज्य गुरुदेव के प्रथम सानिध्य से लौटते हुए आपके द्वारा ट्रेन में रची गई देव-शास्त्र-गुरु पूजा न मात्र मुमुक्षु समाज वरन् सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज का हृदय हार बन चुकी है और प्रायः समस्त पूजा संग्रह में उसे ससम्मान सम्मिलित किया जाता रहा है।

पूजन के एक ही छन्द में अरिहन्त बनने की सम्पूर्ण प्रक्रिया एवं प्रतिज्ञा का जो सुन्दर समावेश हुआ है वह अपने आप में अद्वितीय है।

क्षण भर निज-रस को पी चेतन, मिथ्या-मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है।।
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल रवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अर्हन्त अवस्था है।।
यह अर्घ समर्पण करके प्रभु ! निज गुण का अर्घ बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु ! अर्हन्त अवस्था पाऊँगा।।

---

(3) 'चैतन्य विहार' पृष्ट -3

इसी प्रकार मुनिराज का स्वरूप तो इतनी भावपूर्ण भाषा में अभिव्यक्त हुआ है कि जिसकी गरिमा को अभिव्यक्त करने हेतु शब्द कोष में शब्द नहीं हैं

हे गुरुवर! शाश्वत सुख-दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है।।

जब जग विषयों मे रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विष-कंटक बोता हो।।

हो अर्द्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्वों का चिन्तन करते हो।।

करते तप शैल-नदी-तट पर, तरु-तल वर्षा की झड़ियों में।
समता-रस पान किया करते, सुख-दुःख दोनों की घड़ियों में।।

अन्तर् ज्वाला हरती वाणी, मानों झड़ती हों फुलझड़ियाँ।
भव-बन्धन तड़-तड़ टूट पड़ें, खिल जावें अन्तर की कलियाँ।।

तुम-सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियाँ।
दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ।

इसी प्रकार आपकी नवीन द्वितीय भक्ति काव्य कृति 'सिद्ध पूजा' तो इस युग के भक्ति साहित्य की अद्वितीय कृति है। जिसमें सम्पूर्ण तत्वज्ञान भक्तिरस की अजस्रधारा के रूप में प्रवाहित हुआ है। इस काव्य कृति में सम्पूर्ण जैन तत्वज्ञान के बीज विद्यमान हैं। जयमाला में शुद्ध चिद्रूप के विस्मरण से उत्पन्न चतुर्गति दुखों का एवं शुद्ध चिद्रूप की अनुभूति से संप्राप्त सिद्धदशा तक का अनूठा विवेचन हुआ है। ज्ञानी की भक्ति में मात्र भक्ति ही नहीं किन्तु मंगलमय मुक्ति का महान प्रयोजन एवं उछलता पौरुष निहित होता है, जिसका दिग्दर्शन निम्न छंदों में हुआ है-

निज लीन परम स्वाधीन बसो, प्रभु! तुम सुरम्य शिव-नगरी में,
प्रति पल बरसात गगन से हो, रसपान करो शिव गगरी में.

ये सुरतरूओं के फल साक्षी, यह भव-संतति का अंतिम क्षण,
प्रभु ! मेरे मंडप में आओ, है आज मुक्ति का उद्‌घाटन.

तथा

उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बंधन नाथ !
अरे ! तेरी सुख-शय्या बीच, होगा मेरा प्रथम प्रभात.

जिनेन्द्र देव की भक्ति का इससे उत्कृष्ट अन्य क्या उद्देश्य हो सकता है ?

भक्ति से लौकिक ऐश्वर्य की चाह वाले भोले भक्तों की अज्ञानता पर आपके कवि हृदय से प्रसूत निम्न व्यंग विचारणीय है

तुमको पहिचाना तुम झट बेटा देते हो
और डाकिनी भूत तुरत ही हर लेते हो
कभी-कभी तो तुमको यह कौतूहल आता
अरे फेर देते सहसा ही जज का माथा
इसीलिए आवश्यकता भगवान तुम्हारी
ब्लेक-मार्केटिंग में रखते लाज हमारी
और नहीं तो हमको तुमसे मतलब भी क्या
दुनियां में बस इसीलिए भगवान बच गया ।
तुम्हें जानकर जग तुमसे अनजान रह गया।

वस्तुतः लौकिक संयोगों की उपलब्धि आत्मा के पुरुषार्थ का नहीं वरन् पुण्योदय का फल है । इस तथ्य का उद्‌घाटन करने वाली काव्य पंक्तियाँ स्मरणीय हैं ।

अरे धनादि संयोग पुन्य के उदय जन्य सामान हैं
उनके सम्पादन में चेतन का न तनिक अहसान है
एक अथक श्रम करता लेकिन भूखा सोता रात है
और मोतियों के करण्ड में होता कहीं प्रभात है
विधि का यही विधान न इसमें श्रम का नाम निशान भी
जिससे तड़क.....

भौतिक जीवन के परिर्वतन/मृत्यु के संदर्भ में आपका तत्वज्ञान पूर्ण चिंतन सचमुच मृत्यु को एक चुनौती है–

मेरी अक्षय सत्ता है रे, मैं हूँ अमरपुरी का वासी
सुधा-सिन्धु मेरा जीवन है, नहीं मुक्ति का मैं प्रत्याशी
मर्त्य लोक का मानव करता, मेरे जन्म-मृत्यु की बातें
किन्तु अरे वे तो हैं, मेरे जीवन की श्वासें-प्रश्वासें
अज्ञ विश्व ! इस पावन से तुम नहीं असंयत भाषा बोलो।
मेरे जीवन को मत तोलो।।1।।

निज परिशुद्ध चैतन्य सत्ता की विस्मृति विश्व का महानतम् अपराध एवं भवसंतति का मूल है।

लगा गधों के साथ अरे ज्यों सिंह कोई लासानी हो
या निज को अंग्रेज समझता कोई हिन्दुस्तानी हो
रे अनंत वैभव का स्वामी निपट भिखारी बन फिरता
खाक छानता चौरासी की फिर भी पेट नहीं भरता
हुई अरे नादानी में यह दीन दशा भगवान की
जिससे तड़क.....

इसी प्रकार सम्पूर्ण काव्य संग्रह में तत्वज्ञान के मुक्ता–मोती यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं जिनका गहनतम परिशीलन अपेक्षित है।

काव्य के ये रंग–बिरंगे पुष्प एकमात्र चैतन्य सत्ता के ही विविधरूपों से सम्बद्ध होने के कारण प्रस्तुत कृति का 'चैतन्य वाटिका' एक सार्थक नाम है।

इस प्रकार यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कृति आदरणीय बाबूजी के काव्य कौशल का स्वच्छ दर्पण है।

प्रस्तुत काव्य संग्रह में सर्वप्रथम मंगलचरण के पश्चात् क्रमशः अध्यात्म, वंदना, मुक्तक एवं चतुष्पदियां, गुरुदेव श्री को समर्पित रचनाएं, पूजन एवं पद्यानुवाद संकलित किये गये हैं। कतिपय राष्ट्रीय व सामाजिक रचनायें भी सम्मिलित की गई हैं जो बाबूजी के प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन की रचनायें हैं।

सुदीर्घकाल से ही इनके प्रकाशन की भावना आज साकार हो रही है यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है।

इस सम्पूर्ण कार्य सम्पादन में मुझे ब्र. नीलिमाजी का सहयोग प्रकाशन सामग्री उपलब्ध कराने के रूप में प्राप्त हुआ है। साथ ही श्री अजेय जैन, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट ने काफी परिश्रम पूर्वक इस कार्य को गति दी है, इनके बिना यह कार्य इतना शीघ्र हो पाना संभव नहीं था। श्री प्रो. संतोषकुमार जैन, प्राध्यापक सुशील जैन, चिन्मय जैन एवं ब्र. नीलिमा जैन ने प्रूफ संशोधन आदि में अतिशय श्रम पूर्वक सहयोग प्रदान किया एवं अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन कोटा, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल कोटा, श्री कुन्दकुन्द शिक्षण केन्द्र ट्रस्ट कोटा एवं वीर वनिता संघ कोटा के सदस्यगण ने इस प्रशस्त कार्य को सम्पन्न करने का अवसर एवं उत्साह प्रदान किया। तदर्थ सभी का आभारी हूँ।

आदरणीय बाबूजी का ही इसमें सबकुछ है अतः जो भी विशेषतायें हैं वे पूज्य बाबूजी की हैं और कमियों का जिम्मेदार मैं हूँ। इसलिये सुधी पाठकों से यह आग्रह है कि यदि किसी प्रकार की त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो सूचित करने का अनुग्रह करें।

*सभी जीव इस काव्यधारा में अवगाहन कर निज **चैतन्य वाटिका** में विहार करें – यही भावना है।*

दिनांक: 23 जून, 2002

देवेन्द्रकुमार जैन
गुरुकहान मार्केट
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा

अपनी बात....

चैतन्य वाटिका कुछ लोकोत्तर एवं नैतिक सुमनों का एक छोटा सा बगीचा है जिसकी सुरभित परिधि में जीवन के मूल्यों का बड़ी सावधानी से निर्वाह किया गया है।

काव्य वास्तव में साहित्य का एक महत्वपूर्ण अवयव है वह मनुष्य की अनुभूति की गहराइयों की एक ऐसी समष्टि है जो अपनी सावनी छटा चातक तुल्य श्रोताओं पर विकीर्ण कर उन्हें विभोर कर देती है क्योंकि वह कल्पना प्रधान होती है, कल्पना की विलक्षण एवं मनमोहक सुगंध काव्य का प्राण होती है।

काव्य लोक की एक ऐसी विधा है जो जगत की सभी विधाओं से विलक्षण होती है जगत की सभी विधायें गुरु शिक्षण सापेक्ष होती है जबकि काव्य कला सदा से गुरु शिक्षण निरपेक्ष ही रही है। वह एक जन्मजात प्रतिभा है जो फूल की कली की तरह अभिव्यक्त होकर समय पाकर स्वयं प्रस्फुटित होती है और सजल मेघों की तरह बरस कर श्रोताओं के अंतर को मुग्ध कर देती है।

काव्य के इस महत्वपूर्ण सुरम्य क्षेत्र में कुछ मनचले तथा कथित कवियों के द्वारा कुछ तुकबन्दियों की रचना भी हो रही है। जिनमें शब्दों को तोड़ मरोड़ एवं जोड़ तोड़ करके भानुमती के कुनबे की तरह कुछ बेतुके छंदों की रचना की जाती है। ऐसे कवियों को अपनी रचनायें छपाने का अति आग्रह रहता है और इधर समाज का अधिकांश वर्ग भी काव्य के स्वरूप को न समझने के कारण उन तुकबन्दियों की ओर आकर्षित होकर उन्हें प्रकाशित करके देश व्यापी बना देता है, इस प्रकार समाज में कचरा साहित्य परिव्याप्त हो जाता है इन रचनाओं से समाज की साहित्यिक गरिमा कम हो

जाती है और समाज के सम्बन्ध में साहित्यकार एवं सामान्य लोगों की यह आस्था बन जाती है कि इस समाज में उच्चकोटि के साहित्यकार नहीं हैं। ये रचनायें वास्तव में काव्य नहीं पर काव्य के अपभ्रंश हैं और इनसे समाज का साहित्यिक स्तर काफी आहत होता है।

सोलह वर्ष के विद्यार्थी जीवन में मेरी काव्य प्रतिभा का आविर्भाव हुआ, जब विद्वान एवं कुशल काव्यकार श्री राजेन्द्र कुमार जी 'कुमरेश' कोटा की धार्मिक जैन पाठशाला के धर्माध्यापक पद पर पधारे, उनसे हमें काव्य रचना की काफी प्रेरणा मिली। बाल्य से ही मेरे मन में कवि बनने की तीव्र लालसा रहा करती थी और जब मैं कवियों की विविध कवितायें सुनता था तो मेरा मन विस्मय से भर जाता था कि आखिर ये लोग कवितायें कर कैसे लेते हैं! इसी विस्मय के बेरोक प्रवाह में मेरा कवित्व प्रस्फुटित हो उठा।

वह राष्ट्रीयता का युग था और महात्मा गाँधी के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध आजादी का अहिंसक संग्राम अपने पूरे वेग से आगे बढ़ रहा था, अंग्रेजों के जुल्मों से भारत की जनता त्रस्त हो चुकी थी, अतः कवियों की कविताओं में उन जुल्मों के चित्रण एवं आजादी की गरिमा ही मुख्य विषय होते थे। मेरा कवि भी आजादी की उसी लड़ी की एक कड़ी बन गया और राष्ट्रीय रचनाओं से मेरे काव्य जीवन का प्रारंभ हुआ। उस समय कोटा भारतवर्ष में आजादी की लड़ाई के प्रमुख केन्द्रों में एक मुख्य केन्द्र था और देश में कोटा आजादी की लड़ाई के एक स्मरणीय दिवस 8 अगस्त 1942 का वीर सेनानी तुल्य माना जाता था। कोटा में उन दिनों प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था भारतेन्दु समिति के तत्वावधान में कवि सम्मेलनों की बाढ़ सी आ रही थी।

मेरे काव्य जीवन में एक अद्भुत मोड़ तब आया जब मैं पहली बार सन् 1950 के सावन शुक्लपक्ष में कोटा के अध्यात्म उद्यान के विधाता स्व. पू. बाबू ज्ञानचंद जी के साथ देश में अध्यात्म क्रान्ति के सूत्रधार युगपुरुष पू० गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के चरणों में सोनगढ़ पहुँचा और वहाँ के प्रौढ़ शिविर का शिविरार्थी बना। कुछ ही समय में शिविर एवं पू. गुरुदेव की दिव्यवाणी के माध्यम से हमारे संपूर्ण दुराग्रह प्रक्षालित हो गये और तब से मैंने जो कुछ भी लिखा उसमें अध्यात्म के मोहक मेघों की बरसती घटायें छायी हुई हैं, यहाँ तक कि भक्ति रसिकों की सुहाती देव-शास्त्र-गुरु पूजा श्री स्व. पूज्य बा. ज्ञानचंद जी सा. की प्रेरणा से स्वर्णपुरी (सोनगढ़) से कोटा लौटते समय रेल में ही लिखी गई थी और उसके बाद मेरी मनचाही सिद्धों का स्वरूप सरसाती साहित्यिक सिद्ध पूजा की रचना भी सन् 1992 में हुई थी।

मेरे इस काव्य संग्रह के अध्यात्म-लोक के सम्पूर्ण स्त्रोत पू. गुरुदेव श्री कानजी स्वामी रहे हैं, जिनसे मुझे अविनाशी शुद्धात्म तत्व की मनोमुग्धकारी कथा सुनने को मिली। अतः इस सम्पूर्ण काव्य संग्रह के साथ इसका एक पूरा खंड उन्हीं के श्री चरणों में समर्पित है।

चूंकि मेरी रूचि अध्यात्म प्रधान रही है और समाज भी मुझसे यही अपेक्षा रखता है, अतः इस काव्य संग्रह में मेरी अनेक राष्ट्रीय एवं अन्य विषयों की तथा अनूदित रचनाओं को समाविष्ट नहीं किया गया है।

यह काव्य रचना अपने कालक्रम में स्वयमेव निर्झरित हो गई है, अतः मुझे इसकी रचना का तिलतुष मात्र भी अभिमान नहीं है, क्योंकि इसके कर्त्तत्व का श्रेय मुझे नहीं, पौद्गलिक शब्दों को है। क्योंकि कवि एवं लेखक राष्ट्र के निर्माता होते हैं अतः कवियों एवं

लेखकों से मैं लेखन एवं आचरण में नैतिकता, सदाचार एवं अध्यात्म की अपेक्षा करता रहा हूँ। मैं स्वयं जीवन में अध्यात्म की संरचना को ही जीवन की संपूर्णता मानता हुआ अपनी बात इस प्रकार पूरी करता हूँ कि

"जो चेतन के भीतर झांका, उसने जीवन देखा
बाकी ने तो खींची रे परितप्त तटों पर रेखा"

इसके प्रकाशन हेतु मैं कोटा जैन युवा फेडरेशन का अत्यन्त आभारी हूँ और अनुरोध करता हूँ कि वे इसके प्रकाश में अपने जीवन का संचालन करेंगे!

"युगल"

अनुक्रमणिका

1.	मंगलाचरण (आर्हत् वंदना)	1
	अध्यात्म खण्ड	
2.	ओ चिन्मय!	4
3.	साधक की विश्व को चुनौती	7
4.	मृत्यु!	10
5.	चिर संचित अरमानों का घट	13
6.	चलता चल.....	16
7.	सुख की खोज	19
8.	तुम्हें धरा पर	21
9.	क्षमा पर्व	22
10.	अभिशापों में वरदानों के स्वर्णिम फूल खिला करते है	25
11.	मान	27
12.	आत्म-ज्ञान की गाथा	28
13.	निश्चयाभासी	33
14.	हम	35
	वन्दना खण्ड	
15.	सन्त-वन्दन	38
16.	मंगल-कामना गीत	39
17.	ऋषभावतार	41
18.	भगवान महावीर के प्रति	43
19.	महावीर (अतुकान्त)	47
20.	अरे ओ! शिखर सम्मेद अचल	50
21.	पण्डितप्रवर टोडरमलजी के प्रति श्रद्धांजलि	52

चतुष्पदी एवं मुक्तक खण्ड 54-62

गुरुदेव खण्ड

22. स्वागत गान 64
23. तूफान 66
24. चैतन्य-विहारी 70
25. हुआ वीर के संदेशों का स्वर्णपुरी में प्रत्यावर्तन 71
26. श्रद्धांजलि (पू. श्री कानजीस्वामी के प्रति) 73
27. स्वागत-गीत (सौराष्ट्र का संत) 75
28. पू. गुरुदेव (भाया रामलाल) 77

अनुवाद खण्ड

29. अमूल्य तत्व विचार 81
30. नीरव-निर्झर 82
31. नियमसार का पद्यानुवाद 85

पूजन खण्ड

32. देव-शास्त्र-गुरु पूजन 109
33. सिद्ध पूजन 114

नैतिक खण्ड

34. 15 अगस्त 120
35. प्रेयसि 124
36. आदमी 128
37. विश्व के अर्थ तंत्रियों से 131
38. पीड़ित वधू 132
39. दारिद्र्य एवं वैभव की झाँकी 137
40. कुमारी की अभिलाषा 140

- नमः सिद्धेभ्यः -

चैतन्य वाटिका

(काव्य संग्रह)

मंगलाचरण

आर्हत्-वंदना

तुम चिरंतन, मैं लघुक्षण
लक्ष वंदन, कोटि वंदन !
तुम चिरंतन
मैं लघुक्षण
जागरण तुम
मैं सुषुप्ति
दिव्यतम आलोक हो प्रभु
मैं तमिस्रा हूँ अमा की
क्षीण अन्तर, क्षीण तन मन
शोध तुम
प्रतिशोध रे! मैं
क्षुद्र-बिन्दु
विराट हो तुम
अज्ञ मैं पामर अधमतम
सर्व जग के विज्ञ हो तुम
देव! मैं विक्षिप्त उन्मन्

चेतना के
एक शाश्वत
मधु मदिर
उच्छ्वास ही हो
पूर्ण हो, पर अज्ञ को तो
एक लघु प्रतिभास ही हो
दिव्य कांचन, मैं अकिंचन
व्याधि मैं
उपचार अनुपम
नाश मैं
अविनाश हो रे!
पार तुम, मँझधार हूँ मैं
नाव मैं, पतवार हो रे !
मैं समय, तुम सार अर्हन् !

अध्यात्म खण्ड

जो चेतन के भीतर झांका, उसने जीवन देखा
बाकी ने तो खींची रे, परितप्त तटों पर रेखा.

ओ चिन्मय !

विस्मय होता रे तेरे उन विश्वासों पर
जिनकी कोई धरती, कोई गगन नहीं है!

मृग - मरीचि को रहे तुम्हारे प्राण समर्पित
जिसमें सलिल नहीं है ठहरे हो उस तट पर
मिट्टी में ही रहा अहं जिसका कल्पों से
रत्नराशि उसको कैसे देगा रत्नाकर
छलनाओं से छला गया हो बुद्धि - कोष जो
उसको पैदा करके वसुधा बांझ रही है

तुमने उगता सूरज रोजाना देखा है
वह यौवन भी देखा जिसको झांक न पाये
किन्तु सान्ध्य की अन्तिम श्वांसों में सच बोलो
तुम सूरज का चेहरा तक पहचान न पाये
जीवन का अवलम्ब बनाया उनको तुमने
जिनका अपना ही कोई अवलम्ब नहीं है

शम्पाओं की तप्त-परिधि में खूब तपे हो
और खपे हो इन्द्रभवन की मधुशाला में
क्रीतदास तुम सदा रहे हो रूपावलि के
तुम्हें सुहाई सदा विषय की विष-कन्यायें
अरे रूप के लोलुप ! इतना समझ न पाये
इस बस्ती में तेरा कोई रूप नहीं है

अरे ! पाप की मदमाती काली रातों में
तुम बेहोश रहे मद पी-पीकर जहरीले
और पुण्य के मधुर दास्य की धवल निशा में
तूने अपना रूप निहारा ओ गर्वीले
गर्म और ठण्डी श्वासें ये पाप - पुण्य की
अरे ! मृत्यु की अगवानी है, अमन नहीं है

मिट्टी से ही सदा रहे हैं रिश्ते तेरे
चिर अनन्त मिट्टी ही तेरी साध रही है
तेरे त्याग-तपस्या सब मिट्टी पर ठहरे
पुण्य - पाप का आकर्षण सब मिट्टी ही है
ओ चिन्मय ! मिट्टी के दावेदार रहे हो
मिट्टी की ममता छोटा अपराध नहीं है

रे ! मिट्टी के जड़ अणुओं की शक्ति अपरिमित
अणुभर भी यदि स्खलन चित्त में अणु पर होता
सह नहिं पाता मिट्टी का कण इस अनीति को
जटिल आणविक बन्धन तत्क्षण निर्मित होता
पीड़ाओं की संतति चलती रहती है यों
क्योंकि निरन्तर प्रज्ञा अणु में व्यस्त रही है

प्रलय सृष्टि से पार शान्त-एकान्त-विजन में
अरे ! देह में ही विदेह चिन्मय अमि-घट रे
किन्तु मृत्यु के कृत्रिम-तन्तु कल्पना बुनती
आत्मतत्त्व तो सब सन्दर्भों में अक्षय रे

हिम शैलों पर हमने रवि को तपते देखा
पर हिम के शीतल अन्तस् में तपन नहीं है
अन्धकार में क्रन्दन करता कोई बोला
'अरे ! अँधेरा निर्दय मुझको निगल गया रे'
किन्तु किसी के करुण-स्पर्श ने तभी पुकारा
"बोल रहे हो, फिर कहते तम निगल गया रे"
अरे! आत्म-विस्मृति के तम की घन-परतों में
यों चिन्मय मणि-दीप प्रदीप्त निरन्तर ही है

अरे विश्व तो जड़-चेतन की अकृत नगरी
सब स्वतन्त्र क्रीड़ा करते अपने सदनों में
यहाँ नहीं अवकाश अतिक्रमण का किंचित् भी
अतिक्रमण का यत्न चीखता है नरकों में
वीतराग दर्शन का यह अन्तस्तल छू लो
संसृति के दारुण कष्टों का अन्त यहीं है

पैठो, पैठो अतल शून्य के तल में पैठो
मदिर सुरभि बहती है अगणित शक्ति सुमन की
वहाँ पराये का कोई भी देश नहीं है
सबकी सब है सिर्फ अरे! अपनों की बस्ती
तम के परिकर का उस तल को स्पर्श नहीं रे
अरे! चिरन्तन चित्-प्रकाश का भवन वही है

साधक की विश्व को चुनौती

मेरे जीवन को मत तोलो
अरे विश्व! मेरा पथ छोड़ो, मत अपना अवगुंठन खोलो
मेरे जीवन को मत तोलो।।टेक।।

मेरी अक्षय सत्ता है रे, मैं हूँ अमरपुरी का वासी
सुधा-सिन्धु मेरा जीवन है, नहीं मुक्ति का मैं प्रत्याशी
मर्त्य लोक का मानव करता, मेरे जन्म-मृत्यु की बातें
किन्तु अरे वे तो हैं, मेरे जीवन की श्वासें-प्रश्वासें
अज्ञ विश्व ! इस पावन से तुम नहीं असंयत भाषा बोलो।
मेरे जीवन को मत तोलो।।1।।

अरे विश्व! वह तुमने केवल देखी होगी हिमगिरि गुरुता,
और अधिक कुछ देखी होगी आसमान की रे अनन्तता
मेरी छोटी-सी छाती में तेरा आसमान प्रतिबिंबित
तोल-तोलकर मुझे थक चुके, अतः खड़े ये हिमगिरि लज्जित
मैं हूँ शक्ति पुंज, नहिं मुझसे अरे तुच्छ! मुँह लगकर बोलो।
मेरे जीवन को मत तोलो।।2।।

कितनी बार अरे! देखो तुम, बढ़-बढ़कर मुझसे टकराये
आसमान में टिड्डी-दल-से, तुम मेरे खेतों पर छाये
पर क्या तुमने सोचा है रे! कितनी गहरी कब्र खोद लो
अमर मरेगा क्या, तुम चाहे धरती का पाताल शोध लो
अविनश्वर की नश्वरता का यत्न सफल कब होगा बोलो?
मेरे जीवन को मत तोलो।।3।।

जिसकी तुम पूजा करते, वह लक्ष्मी मेरा पानी भरती
और तुम्हारा पुण्य-देवता मेरे घर का जागृत प्रहरी
अरे! पाप की चर्चा छोड़ो, वह मेरे घर से निष्कासित
कभी-कभी वह कर जाता है मेरे चरणों को प्रक्षालित
धंसक जाएगी पुण्य-पाप की धरा अरे! मेरी जय बोलो।
मेरे जीवन को मत तोलो।।4।।

तुमने भेजी अरे! आँधियाँ मेरी गहराई को पाने
लगे अरे चिंता के बादल मेरी छाती पर मंडराने
आये क्लेश, विषाद आ गये, घृणा,निराशा, घोर विषमता
चले गये ये लज्जित होकर ध्रुव का लगा न पाये पत्ता
अरी आँधियों! अपनी इन नापाक हरकतों को अब धोलो।
मेरे जीवन को मत तोलो।।5।।

तुमने भेजी महाव्याधियाँ मुझे मिटाने रे ओ उन्मन्!
सूखा रक्त, नसें भी सूखी, और हड्डियों का ढांचा तन
फेल हो गया हृदय कभी तो, कभी हृदय का भीषण स्पंदन
सड़ कर सारी देह बन गई अरे! इल्लियों का जन्म स्थल,
शर्म,शर्म! पर ढूंढ सके नहिं तुम चिन्मय की काया बोलो।
मेरे जीवन को मत तोलो।।6।।

रे! लाखों ही श्मशानों में वे तेरी खाकों के पर्वत
तेरी रूपावलियों के ये दृश्य कर रहे हैं नतमस्तक
रे अबोध! तूने सोचा था, खाक हुई चेतन की हस्ती
ओ नादान! चला चेतन तो अपनी नई बसाने बस्ती
ओ अंगारों! धधक-धधक तुम अपनी कब्र स्वयं ही खोलो।
मेरे जीवन को मत तोलो।।7।।

रूप बदल कर फिर तुम आये, छाये अरे! हर्ष के बादल
पाई देह जहाँ युगपत् था रूप और यौवन का संगम
अरे! चमन-से परिवारों की, कोमल किसलय-सी संतानें
अरे रूप की उर्मि रमणियां स्वर लहरी में भरती तानें
बोधि-पुंज को छल न सकी, ओ छलनाओं! जी भर डोलो।
मेरे जीवन को मत तोलो।।8।।

मृत्यु !

अरी मृत्यु की बहरी बाला, ओ वसुधा के महा विधान
नहीं कभी तू मरती, तेरा निखिल लोक में चलता यान
नव जीवन की पृष्ठभूमि, ओ दक्ष धनुर्धर के संधान
भोग सृष्टि की प्रलय-कारिणी, ओ योगी के मंगल गान

निश्छल शिशु-सी निर्विकारिता, सार्वभौम समदृष्टि सुरम्य
सबसे गूढ़ रहस्य जगत् के, तू ही एक चिरंतन सत्य
उन्मन् वैभव की बरसातें, अथवा हो दुर्दैव वितान
तेरा क्षण पर नहीं टलेगा, तू जगती का नियम महान

राजदण्ड तू महा विश्व की, और सृष्टि की सुन्दर नीति
तू एकाकी वीतराग-सी, तुझको नहीं किसी से प्रीति
निखिल विश्व को कवलित करती, लेती बस प्राणों का भोग
असफल सारे राजतंत्र हैं, तुझ पर नहीं कोई अभियोग

कृष्ण-क्रान्ति की सूत्रधारिणी, नियति-नटी के तांडव-नृत्य
विश्व-विजयिनी ओ कंकाली ! रंगमंच के अन्तिम दृश्य
संक्लेशों की जन्मभूमि, ओ पापों के सुन्दर अभिशाप
ओ चिन्ता के तल-प्रकोष्ठ, ओ ज्वालामुखियों के संताप

नन्दन-वन की भीषण दावा, पुण्य-तत्त्व के करुण विलाप
अस्वीकृति सब आवेदन की, जीवन के सुन्दरतम पाप
ओ तस्कर! जीवन बसन्त के, स्वर्णिम पातों के पतझड़
मूर्तिमान विश्वासघात, ओ जीवन के सर्वोत्तम छल

विश्व विपिन में निर्दय भूखी, अपलक व्याली-सी गतिमान
नहिं अपथ्य तेरा कोई भी, भू-मण्डल तेरा जलपान
तेरे अंचल में पलता है जीवन-शिशु सुन्दर सुकुमार
ओ निर्दय ! पर तू ही अन्तिम कर देती उसका संस्कार

पोंछ दिये तूने सहसा ही अनगिन भालों के सिन्दूर
रची महँदियों की चीत्कारें बधिक-तुल्य तू सुनती क्रूर
प्रासादों के भोग-कक्ष, उन्मुक्त-काम का मदिर-विलास
मत्त मस्तियाँ प्रमदाओं की, इन पर तू हँसती चुपचाप

कालकूट विष पी-पी कर भी अरी मोहनी! रही अमर
घर-घर जाती लेकिन लगती नहीं किसी की कभी नज़र
करता लोक तुम्हारी पूजा री ! अनादि से तन्मय मन
नहीं चाहता किन्तु स्वप्न में वह देवी तेरा दर्शन

मूषक - सी तू काटा करती नव-शिशु का जीवन चुपचाप
अरी प्रवीणे! लेकिन कितना अनसुन है तेरा पदचाप
महामान का फेनिल-यौवन करता जग का उत्पीडन
शीश तोड़ देती तू उसका, वज्र विनिर्मित तेरा घन

फाड़ दिये तूने ममत्व के ओ व्याघ्री ! कितने ही चीर
ले जाती निज सबल पाश में नर्क-निगोदों के उस तीर
पावन प्रायश्चित पापों के, ओ कल्मष के चिर-प्रस्थान
मुक्तिवधु की परिणय - पत्री, चेतन के आनन्द-निधान

ऋषियों के मन-सी अचंचला, सघन-शान्ति के अमृत कुम्भ
तू अभाव की सुन्दर-संज्ञा, मंगल-जीवन का प्रारम्भ
निर्ममत्व की सुखद सहेली, वीतराग के चिर विश्राम
अवसादों की अन्तिम संध्या, अन्तिम क्षण के विनत प्रणाम

जन्म-मृत्यु के जन्म-स्थल जो पाप-पुण्य सब ही निःशेष
पंचभूत का चिर-विश्लेषण, सघन-चेतना का संश्लेष
उपसंहार अतीत क्षणों के, ओ साधक के सफल भविष्य
अन्तिम पृष्ठ ग्रन्थराजों के, महायज्ञ के चरम हविष्य

ओ नवयुग के प्रिय आमन्त्रण, मधुमय जीवन के सन्देश
विश्व-नगर की चतुर नागरी, कितना भव्य अरी परिवेश
घनीभूत चैतन्य विभा, निज सौख्य कल्प की शीतल छाँह
इन्द्रभवन के सुख सकुचाते तू पहुँचा देती उस गाँव

धवल धरा के प्रथम चरण, ओ सुख-शय्या के प्रथम विहान
आवर्तन की चिर समाधि, ओ तीर्थंकर के परिनिर्वाण

चिर संचित अरमानों का घट एक दिवस ही फूट चला

चिर संचित अरमानों का घट एक दिवस ही फूट चला।

स्वयं समर्पित करके जीवन जिसको मैंने गले लगाया
स्वयं गरल की घूंटें पी-पी जिसको प्रेम-पीयूष पिलाया,
जिसके एक-एक इंगित पर खून पसीना बना तरल हो,
प्रिय-चुम्बन सा लगा मरण भी सदा मधुर अत्यन्त सरल हो।
जिसको समझा था चिर नाता वही एक दिन टूट चला
चिर संचित अरमानों का घट एक दिवस ही फूट चला

जीवन की वे मधुमय घड़ियां और प्रणय की प्यारी रातें,
यौवन की गोदी में होती क्रीड़ायें मद की बरसातें
अरे रूपहली रातों में जो सरस सुनहले स्वप्न संजोये
आज हृदय के स्पंदन में वे मौन गीत बनकर हैं सोये
थी सब जड़ता की उपासना चेतन फिर भी रिक्त चला
चिर संचित अरमानों का घट एक दिवस ही फूट चला

सदा पराये से जो परिचित बोलो वह निज को क्या जाने
विष को जीवन मान चला जो जीवन को वह क्या पहिचाने
रहा अविद्या के मद में यों अरे मरण को जीवन समझा
रे वियोग जिसका सहचर हो उसको प्रेमालिंगन समझा
यही समझ का भ्रम हो मेरी प्रज्ञा पर आरूढ़ चला
चिर संचित अरमानों का घट एक दिवस ही फूट चला

प्रतिपल जो आकुल रहता हो कौन उसे कहता है जीवन
पद-पद पर जो झुक जाता हो, यह पौरुष का एक विडम्बन
महा प्रलय के प्लावन में जो, बन जाता उत्तुङ्ग हिमाचल,
मधुशाला की मधु-बालायें करती जिस पर जादू निष्फल
इसको पौरुष कहना सीखो यह जीवन की एक कला
चिर संचित अरमानों का घट एक दिवस ही फूट चला।

कितना करते हो प्रयास पर बोलो कितना पा लेते हो,
विफल-सफलता सफल-विफलता में बस गोते खा लेते हो
कौन कह सका रही सफलता मेरे जीवन की थाती है
स्वयं देह भी अन्तिम क्षण जब उसको छोड़ चली जाती है।
सभी चलाचल चलते रहते रही चेतना ही अचला
चिर संचित अरमानों का घट एक दिवस ही फूट चला।

महामान के शिखर चढ़ा जो गर्वित मिट्टी की काया पर
पड़ा अचेतन-सा जो गाफिल रे केवल सुख की छाया पर
अरे शलभ सा टूट पड़ा जो इस फिरती जग की माया पर
किन्तु अभीप्सित जीवन का क्या उसके हाथ कभी आया पर
सुधासित्त गागर समझी थी विष का निर्झर छूट चला।
चिर संचित अरमानों का घट एक दिवस ही फूट चला।

अरे स्नेह से हीन बालुका कितना स्नेह कहो दे देगी
शुष्क तृणावलि पागल मृग को बोलो कितनी सौरभ देगी
अरे कभी क्या मृगतृष्णा से चिर पिपासु की प्यास बुझेगी
क्या करील से कभी भूलकर आम्र मंजरी भी निकलेगी?
रे! अभाव में सद्भावों की आशा सदा रही विफला,
चिर संचित अरमानों का घट एक दिवस ही फूट चला।

जिसकी खोज रही युग-युग से वही छिपा देखो अन्तर में
तुम बहिरात्म रहे विभ्रम से वह बैठा था अन्तस्तल में,
कहां खोजते ऐ मतवाले! जहां खोजते वहां नहीं है
अरे विलक्षण सुख की निधियां सदा तुम्हारे पास रही हैं
उसका जग में कौन सहारा, जो अपने से रूठ चला,
चिर संचित अरमानों का घट एक दिवस ही फूट चला।

——— ******* ———

चलता चल......

चलता चल भाई,चलता चल
मोक्षमार्ग पर ढलता चल
रे! व्यवहार मार्ग - निर्देशक
तू निज - बल से बढ़ता चल
चलता चल ....

शान्ति प्रपूरित तू अमृत - घट
तेरी जीवन यात्रा बेहद
जो तेरे पथ को रोके तू
उसका मद - दल दलता चल
चलता चल ....

अगणित शक्ति-निलय तू चेतन
तू भरचक आनन्द निकेतन
जन्म-मृत्यु का स्पर्श न तुझको
निर्भय निज-पद धरता चल।
चलता चल ....

तेरा जीवन ज्ञान सुधा है
आनन्दामृत पान सदा है
कहता दुखी अरे! अपने को
बस इस भ्रम को हरता चल।
चलता चल ....

ये आंधी - तूफान जगत के
प्रलयंकर पवमान विकट से
अरे! ज्ञान के वज्र किले से
केवल उन्हे निरखता चल
चलता चल ....

तु ध्रुव निश्चल तीर्थ अरे है
परिणति वाम परिक्रमा दे है
बन्ध-मोक्ष का दोष न तुझको
परिणति-परता हरता चल
चलता चल ....

परम भागवत् पुरुष पुरातन
हे अनंत अपराजित तप बल
तू है मोह शत्रु का मरघट
उसके मद को दलता चल
चलता चल ....

तू अखण्ड संसार खण्ड है
तू दिनकर संसार अंध है
रे! अनन्त संसार अन्त ले
शिवमग में डग भरता चल
चलता चल ....

तुझे कर्म की छाँह नहीं है
कुछ भी करना राह नहीं है

तू भरचक आनन्द टीला है
केवल यह हां भरता चल
चलता चल ....

तुझे पुण्य वरदान नहीं रे!
तुझे पाप अभिशाप नहीं रे!
तू बेअसर अरे नटनागर
सुमति नटी संग नटता चल।
चलता चल ....

चार गति पर तू अगति है
अरे असंख्य प्रदेश क्षितिज है
उदय अस्त बिन तू प्रचण्ड रवि
जग आलोकित करता चल।
चलता चल ....

बोधि धाम आनन्द राम तू
है समग्र भगवान अरे! तू
तुझे भुलावा देती जड़ता
हीरा कांच परखता चल।
चलता चल ....

होना तेरा काम नहीं रे।
खोना तेरा नाम नहीं रे!
परमभाव के गहन उदधि तू
आनन्द रंग उछलता चल।
चलता चल ....

सुख की खोज

सुख के आवासों की मैंने सुनी अनेकों ही चर्चाएं
सुख की अभिलाषा से मैंने की लाखों पूजा-अर्चायें।।

मुझे इष्ट था सुख; मैं दौड़ा सुरपति के भवनों की ओर
क्योंकि सुना करता था सुख की नहीं वहां सीमा या छोर।
बढ़ा स्वर्ग की ओर, मार्ग में मिले गगन के चांद-सितारे
नभ-मण्डल के दीप सहस्त्रों चमचम-चमचम करते तारे।।

मैंने नहीं सुनी कुछ उनकी, मैं पहुंचा सुरपति के द्वार
जिनमें झनझन-झनझन करते लगे हुए सोने के तार।
रत्न विनिर्मित भूमि वहां की, थे रमणीक भव्य प्रासाद
नहीं दीख पड़ता था कोई दुःख का साधन या अवसाद।।

मेरे स्वागत को तब आई विद्युत-सी चंचल सुरबाला
उनमें घुलकर-मिलकर मैंने पान किया अमृत का प्याला।
मुग्ध हुआ मैं सुनकर उनकी रुनझुन-रुनझुन करती पायल
पूर्व जन्म की त्याग-तपस्या हुई अरे! उस छलि से घायल।।

मैं उतरा उनके जीवन में, वे मेरे जीवन में आई
मेरे ज्ञान-चक्षु के आगे अब पूरी अंधियारी छाई।
सुरबाला के स्मित अधरों अब मुझको जीवन मिलता था
मेरा मुझ पर स्वत्व नहीं था, मैं तो सब-कुछ ही उनका था।।

वे सुरम्य वन-उपवन वासी सर के शीतल-तट एकान्त
हरी दूब के खेत मनोहर और सुमन की सौरभ शान्त।
श्वेत-शिखर पर्वत श्रृंगों के अब थे मेरे क्रीड़ागार
हंस-कोकिला के स्वर में अब, मैं स्वर भरता था सुकुमार।।

सोचा इससे बढ़कर भी क्या सुख की पराकाष्ठा हो क्यों
किन्तु मलिन कोने में बैठा रुदन कर रहा देव कहो क्यों।
रे! अमृत में भी मिलती क्या जहर हलाहल की यह रेखा
अरे! स्वर्ग के सुख सदनों में रोने का क्या काम अनोखा।।

पूछा, "भाई! क्यों रोते हो, क्या सुरपति की हुई ताड़ना
बोलो तो किस रिपु ने तेरी भंग की यह सुख-साधना?
तेरी रक्षा हेतु बन्धु मैं यह भीषण को दण्ड धरूंगा
तेरी रक्षा हेतु बन्धु मैं वज्रों के भी खण्ड करूंगा।।

मेरा वक्षस्थल फटता यह देख तुम्हारा करुण विलाप
रोते ही जाते हो देखो कुछ तो करो बन्धु संलाप"।
'नहीं ताड़ना हुई किसी की', बोला वह सुर करुणाकांत
'नहीं साधना भंग हुई', वह बोला क्षण भर होकर शान्त।।

"अरे! स्वर्ग का नियम यही है, यही स्वर्ग का महा-विधान
हँसता-हँसता आता, रोते-रोते होता है अवसान।
यों सुर से मानव अच्छा है, जब होता बालक का जन्म
रोता जग की दशा देखकर, लघु से शिशु का लघु सा मन।।

किन्तु अरे! हँसता जाता है, ज्यों-ज्यों मृत्यु बुलावा देती
आगे बढ़ता ही जाता है, ज्यों-ज्यों मृत्यु भुलावा देती।
और अन्त में हँसता-हँसता तज देता मिट्टी के प्राण
नर से नारायण बन जाता, मानव से बनता भगवान"।

तुम्हें धरा पर

तुम्हें धरा पर यदि जड़ता से प्यार है
तो चेतन बनने का क्या अधिकार तुम्हें है?

अरे! रूप पर मुग्ध शलभ-से टूटते
यौवन देते या तुम यौवन लूटते?
लूट लिया अब तक कितना संसार में
कितनी तृप्ति मिली रे! जड़ के प्यार में?
अरे! चर्म के रंध्रों में तव वासना
चर्मकार संज्ञा क्यों अस्वीकार तुम्हें है
तुम्हें धरा पर यदि जड़ता से प्यार है
तो चेतन बनने का क्या अधिकार तुम्हें है?

तप्त तवे की बूंद जिंदगी जा रही
किन्तु न सुख की गंध कहीं से आ रही
चलता जीवन पर प्रतिपल तूफान है
जग का दृष्टा अपने प्रति बेभान है
अरे! कूप में खड़े गगन को देखते
शर्म-शर्म धी पुंज अरे! धिक्कार तुम्हें है
तुम्हें धरा पर यदि जड़ता से प्यार है
तो चेतन बनने का क्या अधिकार तुम्हें है?

तेरी गरिमा गलती जड़ की प्रीति में
घूरे का अभिमान पाशविक रीति है
तू आनन्द-निकेतन बोधि-निधान रे
चिन्मय-काया का अमूर्त-परिधान रे
अरे! अमरता के पुतले ठहरो जरा,
विस्मय है हर कदम मृत्यु-आतंक तुम्हें है
तुम्हें धरा पर यदि जड़ता से प्यार है
तो चेतन बनने का क्या अधिकार तुम्हें है?

क्षमा पर्व

यह क्षमा पर्व का दिवस एक
संदेश महा लेकर आया
जो हृदय युगों से टूट चूके
यह उन्हें शक्ति देने आया

बिखरी मणियां अनमोल अरे!
अनमोल अरे! बिखरे मोती
ऐ! बिखर-बिखर हंसने वालों
जगती तुम पर रोती होगी

जो तार वीण के टूट चुके
वे तार मिलाने ही होंगे
स्वर में स्वर भरकर विगत गीत
जागृति के गाने ही होंगे

इस जग में बिखर-बिखर कर भी
क्या सत्ता रह सकती होगी
वर्षा की बिखरी बूंदे क्या
सरिता सागर भरती होगी

यह क्षमा प्रेम का अग्रदूत
मल-मल कर कालिख धोता है
भर-भर देता अमृत प्याली
यह बीज मुक्ति का बोता है

लानत है ऐसे जीवन पर
मद निर्झर झर-झर झरता हो

चाहे भाई झोली फैला
दर-दर की ठोकर सहता हो

यह भावों का संसार यहाँ
वचनों का कोई तोल नहीं
रत्नों की ढेरी में होगा
क्या काँच खण्ड का मोल कहीं?

हम कीट वासना के क्या इस
दिन का सब मोल चुका देगें
'बस क्षमा कीजिए' कहकर क्या
जग का वैषम्य मिटा लेगें।

यह पर्व सिखाता है हमको
जग का जग को देते जाओ
जीवन की नौका हल्की कर
भव-सागर से खेते जाओ

तब निखर उठेगा यह मानस
यह क्षमा करेगा कंचन-सा
छा जावेगा यह जीवन में
शिशु पर माता के अंचल-सा

फिर एक वर्ष के बाद अरे
क्यों आवे ऐसा पर्व कहो
हे महाशान्ति के महा पर्व।
जीवन में हरदम साथ रहो

तब एक-एक क्षण जीवन का
बस पर्वराज बन जावेगा

यह जीवन है, यह पर्वराज
यह भेद नहीं रह पावेगा

फिर अपने और पराये की
नहिं जीवन में दुविधा होगी
फिर कौन क्षमा का पात्र कहो
जब क्षमामयी वसुधा होगी।

अभिशापों में वरदानों के स्वर्णिम फूल खिला करते हैं

अभिशापों में वरदानों के स्वर्णिम फूल खिला करते हैं।
पद की ठोकर खाता पत्थर पड़ा धूल में सिसकी भरता,
पल भर भी जो पा न सका है, निष्ठुर जग की महंगी ममता,
अरे! श्रमिक की उस टाँकी से उसका हृदय निकल पड़ता है,
रत्न-मुकुट भी जिसे देखकर सविनय नीचे झुक पड़ता है,
लक्ष-लक्ष की पावन पूजा पत्थर भी यों पा जाते हैं,
अभिशापों में वरदानों के स्वर्णिम फूल खिला करते हैं।।1।।

अमर साधना में रत योगी तन काँटे-सा सूख गया है,
वैभव की उन्माद भरी उन रातों को अब भूल गया है,
इधर वासना थकती जाती उधर तप रही कंचन काया,
मचल पड़ी है उसे रिझाने आज विश्व की मोहक माया,
तपो-वह्नि में जल-जल योगी कंचन हो निकला करते हैं,
अभिशापों में वरदानों के स्वर्णिम फूल खिला करते हैं।।2।।

इसे भूलना मत रे! जीवन, संघर्षों की एक कहानी,
जीवन में संघर्ष न हो तो, यही मृत्यु की एक निशानी,
सुख की चाह न करना मानव वह विनाश की धूमिल रेखा,
दुःख से बिछुड़-बिछुड़ क्या जग में, सुख को जीवित रहते देखा?
विहँस गरल को पी-पी मानव यों शिव-शंकर बन जाते हैं,
अभिशापों में वरदानों के स्वर्णिम फूल खिला करते हैं।।3।।

जग जिसको अभिशाप समझता, मैं वरदान उसे कहता हूँ,
अतः दुःख के झंझावातों को हँस-हँस कर सह लेता हूँ,
सदियों से जो अरे! विश्व की क्रूर ठोकरें सहते आये,
उन्हें मिला वरदान, विश्व ने श्री चरणों में शीश झुकाये,
पुण्य-पूत ठोकर से पत्थर अरे! अहिल्या बन जाते हैं,
अभिशापों में वरदानों के स्वर्णिम फूल खिला करते हैं।।4।।

जीवन की काली रातें हों, आशा सरिता सूख चली हो,
सरस सरोवर मानस का जब मृगतृष्णा की मरूस्थली हो,
अन्तिम श्वासें लेती हो जब यह मेरी मिट्टी की काया,
पर क्या मेरे ज्ञान दीप को कोई कभी बुझाने पाया?
जग के प्रलय-तिमिर में मेरे अन्तर्दीप जला करते हैं
अभिशापों में वरदानों के स्वर्णिम फूल खिला करते हैं।।5।।

मान

मान के ये शैल रेतीले
मृग मरीचि के मधुर टीले
झूमता उद्यान में ज्यों झाड़
भूमि पर करता करूण-चीत्कार

रे चिता पर मखमली संस्तर
किंतु है निस्तब्ध मानी स्वर
भूप बनता कीच का कीड़ा
मान की लिख लो महा पीड़ा

काल खुद लिखता रहा इतिहास
मान का करता रहा उपहास
कांच की चूड़ी निभा ले साथ,
पर न करना मान का विश्वास

आत्म-ज्ञान की गाथा

आओ भाई तुम्हें सुनाएं गाथा आतम-ज्ञान की,
जिससे तड़क-तड़क गिर पड़ती कर्मों की संतान भी
वंदे जिन-वरम् वंदे जिन-वरम्

(1)

लगा गधों के साथ अरे ज्यों सिंह कोई लासानी हो
या निज को अंग्रेज समझता कोई हिन्दुस्तानी हो
रे अनंत वैभव का स्वामी निपट भिखारी बन फिरता
खाक छानता चौरासी की फिर भी पेट नहीं भरता
हुई अरे नादानी में यह दीन दशा भगवान की
जिससे तड़क.....

(2)

षट द्रव्यों का चक्र सुदर्शन जग में चलता रहता है
वह बेरोक निरंतर अपने सुन्दर पथ पर बढ़ता है
किसकी हस्ती उसकी गति को रोक सके जो निज बलसे
कौन अभागा सिंह वदन में बढ़कर अपनी अंगुलि दे
यह अखंड सिद्धान्त बात यह सहज प्रकृति विज्ञान की
जिससे तड़क.....

(3)

अणु-अणु की सत्ता स्वतंत्र है द्रव्य मात्र स्वाधीन सभी
सब की सीमा न्यारी नहिं आदान-प्रदान विधान कभी
सबको अपनी सीमा प्यारी अपना घर ही प्यारा है
अरे विश्व का शांति विधायक यह सिद्धान्त निराला है
यही वस्तु की मर्यादा है यही वस्तु की शान भी
जिससे तड़क.....

(4)

जड़ चेतन छह द्रव्य विश्व में न्यारे-न्यारे रहते हैं
पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश इन्हें जड़ कहते हैं
चेतन ज्ञान विशिष्ट वस्तु है जड़ में ज्ञान नहीं रहता
आदि रहित है अंत रहित है जड़ चेतन की यह सत्ता
यहीं विश्व में रहे रहेंगे रहना इनका काम भी
जिससे तड़क......

(5)

जो है उसको कौन मिटावे और नहीं को लावे कौन
भिन्न-भिन्न हो जिसकी सत्ता उसको कहो मिलावे कौन
प्रति-पल का निश्चित परिवर्तन कौन करे आगे पीछे
सत् का अरे विनाश असत् का उत्पादन हो तो कैसे
स्वयं सिद्ध जो उसको क्या आवश्यकता भगवान की
जिससे तड़क.....

(6)

होता नहीं विनाश कभी पर्याय बदलती रहती है
अरे! तरंगित सरिता जैसे अविकल बहती रहती है
उठती है कल्लोल उसी में विलय उसी में हो जाती
पर सरिता तो अपने पथ पर शाश्वत ही बहती जाती
पल-पल अलट-पलट करता अणु-अणु सत्ता का त्राण भी
जिससे तड़क.....

(7)

यह पर्याय स्वभाव कि वह तो सदा पलटती रहती है
आता नव उत्पाद पुरानी व्यय को पाती रहती है
द्रव्य सदा ध्रुव होकर रहता उसकी अक्षय सत्ता है
ब्रह्मा विष्णु महेश यही उत्पाद-धौव्य-व्यय मत्ता है
यही वस्तु का अक्षय जीवन यही सहज वरदान भी
जिससे तड़क.....

(8)

है स्वभाव यह सहज वस्तु का सदा अकेला एक है
यह ही उसकी सुन्दरता है वह पर से निरपेक्ष है
सदा अरे अपने गुण पर्यायों में खुल कर खेलता
किन्तु एक की कृतियों का फल नहीं दूसरा झेलता
झूठ कहानी अरे परस्पर सुख-दुख-बाधा दान की
जिससे तड़क.....

(9)

अणु को भी अवकाश नहीं है अपने-अपने काम से
सभी सदा सम्राट अकेले अपने-अपने धाम के
अपना काम सदा करने की अणु में भी बल शक्ति है
नहीं प्रतीक्षा पर की करता उसके कुल की रीति है
स्वयं शक्तिमय को न अपेक्षा पर से बल आदान की
जिससे तड़क.....

(10)

एक सहायक होता पर का यह लौकिक व्यवहार है
बाधा देता एक दूसरे को यह लोकाचार है
बचता जीवन तो पर पर होता रक्षा आरोप है
मरता स्वयं लोक करता पर पर हत्या का थोप है
है स्वतंत्र जीवन, मिथ्या है गाथा बाधा त्राण की
जिससे तड़क.....

(11)

पूर्ण शक्तिमय अणु-अणु बोलो कोई किससे काम ले
पूर्ण कुंभ को कौन बुद्धिमन् बरबस ही जलदान दे
सलिल भरे घट को जल देना श्रम का ही अपमान है
सदा पूर्ण जो उसको रीता कहना घोर अज्ञान है
यही मान्यता मूल रही है संसृति-चक्र-विधान की
जिससे तड़क.....

(12)

जड़ का कार्य सदा जड़ता में जड़ता उसका धर्म है
जड़ता ही उसका स्वभाव और जड़ता उसका कर्म है
जड़ता द्रव्य शक्ति भी जड़ता जड़ता ही पर्याय है
द्रव्य-क्षेत्र और काल भाव सब जड़ता ही व्यवसाय है
अतः न जड़ में पर्यायें होती हैं श्रद्धा ज्ञान की
जिससे तड़क.....

(13)

ज्ञान शून्य जड़ नहीं कभी भी निज-पर को पहिचानता
जग में चेतन तत्व एक बस पर को अपना मानता
चेतन का श्रद्धा विकार बस यह भवतरू का प्राण है
सुख सागर की घोर कष्टमयता का यही निदान है
नहीं पराया दुख का कारण नहीं सुख व्यवधान भी
जिससे तड़क.....

(14)

अपने सुख के हेतु चेतना पर के मुंह को ताकती
अपने दुख के कारण को वह पर में सदा तपासती
अरे अज्ञ शुक निज को नलिनी-स्नेह-पाश में बांधता
और अकारण नलिनी को बंधन का कारण मानता
नहीं छोड़ता, हुआ न तब तक स्वर्णिम-मुक्ति-विहान भी
जिससे तड़क.....

(15)

अरे धनादि संयोग पुन्य के उदय जन्य सामान हैं
उनके सम्पादन में चेतन का न तनिक अहसान है
एक अथक श्रम करता लेकिन भूखा सोता रात है
और मोतियों के करण्ड में होता कहीं प्रभात है
विधि का यही विधान न इसमें श्रम का नाम निशान भी
जिससे तड़क.....

(16)

यही दृष्टि का विपर्यास है यह ही पहली भूल है
भवतरु की संभूति वृद्धि फलमयता का यह मूल है
जब तक पौरुष सोता रहता तब तक यह नादान है
अरे! तभी तक ही तो कहते कर्म महा बलवान है
ज्ञान और चारित्र सभी इसके अभाव में दीन हैं
विधवा के श्रृंगार तुल्य वे सुन्दरता श्री हीन हैं
अरे! अगोचर महिम मुक्ति के मंगलमय सोपान की
जिससे तड़क.....

आओ भाई तुम्हें सुनाएं गाथा आतम-ज्ञान की
जिससे तड़क-तड़क गिर पड़ती कर्मों की संतान भी
वंदे जिन-वरम् वंदे जिन-वरम्।

——— ******* ———

निश्चयाभासी

(एक व्यंग)

एक निश्चय जी को बुखार हो गया
गये डॉ. के पास
बोले डॉ.सा. पर्याय को बुखार हो गया है
डॉ. समझा पर्याय इनकी पत्नी का नाम है
पत्नी का नाम लेना इस युग की बड़ी शान है
तो डॉ. बोला ले आइये पर्याय को
अविलम्ब देख लूंगा
निश्चय जी चकराये
बोले डॉ. पर्याय तो मेरे ही साथ है
डॉ. बोला तो ले आओ पर्याय को जल्दी, देखना
तो मेरे ही हाथ है
निश्चयजी फिर भन्नाये, काटो तो खून नहीं
मन ही मन बोले, डॉ. कितना मूर्ख है
जैन होकर जैन की ए.बी.सी.डी. भी नहीं जानता
अरे! द्रव्य और पर्याय का भेद नहीं पहिचानता
निश्चय जी ने मन ही मन, मन को दबाया
बोले 'डॉ. पर्याय तो मेरे ही पास है
आप बार-बार करते लाने की बात हैं
आपने तो कभी फुरसत से सुना नहीं धर्म

पर मैं तो जानता हूँ जैन धर्म का मर्म
जैन धर्म पर्याय को आत्मा नहीं मानता
पर इस महामर्म को कोई विरला पहिचानता
फिर मैं कैसे कह दूँ कि मुझे बुखार है
मेरा तो नष्ट होता सम्यक्त्वसार है'
डॉ. बोला मैं सब कुछ समझ गया
अब मत समझाओ
और जल्दी से सीधे मेंटल हास्पिटल चले जाओ।

हम

अरे जयन्ती निर्वाणों की हम चर्चा करते आये हैं
दीप धूप से सत्पुरुषों की अर्चा भी करते आये हैं

संतों ने जग में जो छोड़ा हमने उसको शीघ्र बटोरा
वही किया है हमने भी तो करता है जो एक लुटेरा

हमने कितने पर्व मनाये, देखी कितनी दीपावलियाँ
किन्तु ढूंढने पर भी जग में, हम-सा निकलेगा क्या छलिया?

हमें विश्व का ज्ञान नहीं है उसमें भी कुछ होता होगा
हम समझे हैं सारा जग भी हम-सा ही तो सोता होगा

हमें ज्ञान भी क्यों हो जग का, जब हम स्वयं हमारे स्वामी
जब कर्मों ने हमें बांट दी अपनी निधियां न्यारी-न्यारी

अपने पुण्य भोगने का भी, क्या हमको अधिकार नहीं है?
कर्म-जन्य वैषम्य अरे क्या इसका भी प्रतिकार कहीं है?

जग की भूख दरिद्रावस्था एक पलक में उड़ जाती है
कर्मवाद की तेज कटारी, जब तर्कों में चल जाती है।

सदियों से हम करते आये धर्म, इंच पर हिल ना पाये
अपने जहरीले मानस को ज्ञान-सुधा से सींच ना पाये

महा खोखला जीवन उससे परहित भी फिर क्यों हो पाये
अपने और पराये की ही खाई जब तक पट ना जावे

महापुरुष तो जग में आते-जाते जग को दे जाते है
किन्तु जौहरी ही हीरों का अद्भुत मोल चुका पाते हैं

हमने चाहा विश्व हमारा जीते जी जो चाहे ले ले
चाहे फिर निर्धन के प्राणों से हम खुलकर होली खेलें

आज विश्व में जो हम सुनते हाहाकारों का वह गर्जन
अत्याचारों-व्यभिचारों का, होता भीषण नंगा-नर्तन

हमीं अरे उसके दोषी हैं, स्वयं पुण्य भी है अपराधी
जिसने जग के सुख के सुन्दर उद्यानों में आग लगा दी

युग निर्माण चाहता है पर हम निर्वाण किये जाते हैं
युग अभियान चाहता है, पर हम पीछे हटते जाते हैं

भौतिक आध्यात्मिक जीवन में श्रम को महा महत्व मिला है
जीवन के इस मूल तत्व को हमने पैरों से कुचला है

जीवन में विश्राम हेतु जो सत्पुरुषों ने वृक्ष लगाये
हमने केवल तोड़-तोड़ कर निर्दय हो उनके फल खाये

महापुरुष है जो जीवन में मल-मल जग की कालिख धोता
पर हमने तो उनके मुंह पर, जी भर-भर कर कालिख पोता

उनके क्षणभर के जीवन से यह जीवन ही लहरा जाता
यदि थोड़ा भी हमने उनसे जोड़ा होता जीवन-नाता

उनका एक-एक अक्षर भी जीवन सुमन खिला जाता है
पारस का लघु कण लोहे को, देखो स्वर्ण बना जाता है

बुझा ज्ञान का दीप और सब मुरझा गई हृदय की कलियाँ
क्यों न विडम्बन होगा यह, हम आज मनाते दीपावलियाँ?

वन्दना खण्ड

सन्त-वन्दन

ओ मानवता के केन्द्र बिन्दु
नश्वर जग के शाश्वत प्रकाश
ओ नग्न अहिंसा नग्न सत्य
है भौतिकता के महानाश
हम संसारी तू मुक्ति दूत
तू पुण्य पूत हम महापाप
हम हैं जड़ता के मूर्तरूप
चेतन महान चेतन विराट

हम चूम रहे जग की छाया
तुम छोड़ चले जग की माया
जग तुझे चूमने को चलता
हम चूम चले जग की काया
तुम लक्ष वीण के एक तार
तुम लक्ष-लक्ष के एक राग
तुम कोटि-कोटि के हिय-प्रसून
तुम स्वयं सिद्ध से साम्यवाद

तेरे मानस में सत्यवास
तेरी वाणी में विश्व क्षेम
निज चिंतन तेरी निधि असीम
तुझको न अपेक्षित मुक्त हेम
हे महात्याग! हे महाभाग!!
कितना अनंत तेरा प्रयाण
तेरे पुनीत युग चरणों में
शतशत प्रणाम शतशत प्रणाम।

मंगल-कामना गीत

आधि-व्याधि परिपीड़ित जन-मन मंगलमय हो जावे।

(1)

धवल हिमाचल में बिखरी है जिसकी अमृत जड़ियां,
विश्व शान्ति-संदेश लिए जीती जिसकी संस्कृतियां।
स्वच्छ पवन पीयूष-दुग्ध देते थे जिसको जीवन,
शस्य-श्यामला भूमि धान्य जिसका मानो संजीवन।
प्रकृति का यह देश, सभी प्रकृति जीवी बन जावे,
आधि-व्याधि परिपीड़ित जन-मन मंगलमय हो जावे

(२)

ऋषियों का यह देश हमारा शोषित है, लुंठित है,
आज हुई निस्सीम स्वार्थ से मानवता पीड़ित है।
मृत मानव को जीवन देती ऋषियों की जो निधियां,
आज हुई वे मात्र हमारी धन-अर्जन की विधियां।
त्रस्त हुए कण-कण जग के रे! क्यों कर संबल पावें,
आधि-व्याधि परिपीड़ित जन-मन मंगलमय हो जावे।

(3)

तरू अशोक, तुलसी, पलास, फल-फूल, मूल, सरितायें,
अमर प्रकृति के उपादान ये कोमल बेलि लताएं।
पद-पद पर इनकी सौरभ से महक उठे यह जीवन,
कृत्रिम साधन में न नष्ट हों कभी हमारे तन-धन।
मुरझाये मानव-मानस में आशा सुमन खिलावें,
आधि-व्याधि परिपीड़ित जन-मन मंगलमय हो जावे।

(4)

सरस सरोवर मानस का है सूना शुष्क मरूस्थल,
भीषण रोग-शोक के जिसमें बढ़े करीलों के वन।
ये शीतल उद्यान बन चले, हो जीवन में समता,
जन-सेवा-हित बढ़ें छोड़ हम जड़ प्राणों की ममता।
तपते झंझावातों में हम मलय समीर बहावें,
आधि-व्याधि परिपीड़ित जन-मन मंगलमय हो जावे।

ऋषभावतार

मंगल-मय नव युग का प्रभात
जा रहा भोग आ रहा कर्म
अवरुद्ध मुक्ति के द्वार खुले
जागा चेतन में आत्म धर्म

ले मुक्ति साध मानव जागा
दिनकर विधु हँसे गगन तल में
तुम क्रान्ति लिए उतरे योगी
थी क्रान्ति अवनि में, अंबर में

प्रतिबद्ध - पक्ष चेतन - विहंग
ले सका मुक्ति की श्वास नहीं
जब भोग भूमि के स्वर्णमयी
पिंजर की वह चिरदास रही

तुम अद्भुत परिवर्तन लाये
अब बाह्यान्तर का एक बोल
श्रम-श्रम की पुण्य-तुला पर अब
मानव-जीवन को रहा तोल

रे! श्रम वंचित थी भोग-भूमि
बस मुक्ति-मुक्ति की प्यास रही
अब खुले धरित्री के बंधन
स्वाधीन मुक्ति - प्रश्वास वहीं

बहिरंग और अंतर जीवन
प्रभु! तुझमें एकाकार हुए
जिसके अभाव में भोग भूमि
के सुख विषमय संभार रहे

असि,मसि,कृषि,शिल्प,वणिज,विद्या
जीवन के भौतिक उपादान
आगार और अनगार उभय
पथ के प्रभु थे तुम मूर्तमान

अन्तर दृग बोध चरण पौरुष
से खुला क्षपक-उपशम विधान
योगी! तुम वसुधा पर उतरे
फट गये अज्ञता के वितान

तुम स्वयं लोक आदर्श बने
अन्तर चाहे उन्मूलन कर
रे योगी! बढ़े निरन्तर ही
जब तक न अनाकुल था अंतर

मृण्मय काया का विलय और
फिर समरसता विलसी अनंत
अचलित चैतन्य नमन तुमको
वंदन शत लोकातीत संत

भगवान महावीर के प्रति

तुम्हें जानकर जग तुमसे अनजान रह गया!
रे! मानव की तरह तुम्हारा जन्म हुआ ही
राजघराने में जन्मे यह बड़ी बात नहिं
महलों में रहकर भी मानव गिर जाता है
और सुमन कांटो में पलकर खिल जाता है
अरे! झोंपड़ी महल यहाँ कुछ बात नहीं है
जागे पौरुष, मुक्ति कहीं अवरुद्ध नहीं है
पर दुनिया तो इस रहस्य को समझ न पाई
कैसे तू इन्सान अरे भगवान बन गया?
तुम्हें जानकर जग तुमसे अनजान रह गया।।1।।

आते जब तुम गर्भ, स्वर्ग से रत्न बरसते
जन्म तुम्हारा जान स्वर्ग से इन्द्र उतरते
होता जब वैराग्य देवता तब भी आते
समवसरण का वैभव भी सब देव रचाते
यह सब सच है किन्तु बड़ी यह बात नहीं है
रे! विभूति तो सदा पुण्य की दास रही है
पर दुनिया तो चमत्कार को पूजा करती
इसीलिए तो तू केवल अवतार रह गया
तुम्हें जानकर जग तुमसे अनजान रह गया।।२।।

तुमको पहिचाना तुम झट बेटा देते हो
और डाकिनी भूत तुरत ही हर लेते हो
कभी-कभी तो तुमको यह कौतूहल आता
अरे फेर देते सहसा ही जज का माथा
इसीलिए आवश्यकता भगवान तुम्हारी
ब्लेक-मार्केटिंग में रखते लाज हमारी
और नहीं तो हमको तुमसे मतलब भी क्या
दुनियां में बस इसीलिए भगवान बच गया ।
तुम्हें जानकर जग तुमसे अनजान रह गया।।3।।

करता है खिलवाड़ राग यों वीतराग से
सुनता गाली वीतराग रे! अधम राग से
होता है भगवान वीतरागी निश्चय ही
जिसे राग का पक्ष लेश भी शेष रहा नहिं
वह निर्माण और विध्वंस नहीं करता है
सुख दुख देने का न उपक्रम वह करता है
पर हमने भगवान हमारे घर का माना
खंड-खंड हो इसीलिए भगवान रह गया
तुम्हें जानकर जग तुमसे अनजान रह गया।।४।।

बोले वीर स्वतन्त्र विश्व का अणु-अणु ही है
अक्षय है वह परिवर्तन प्रतिक्षण निश्चित है
नहीं सृष्टि निर्माण, सृष्टि का प्रलय नहीं है

परिवर्तन में वस्तु सदा ही अक्षय ही है
रे कंगन से हार, हार से कंगन बनता
किन्तु स्वर्ण की दोनों में है अक्षय सत्ता
नहीं एक को कभी अपेक्षा होती पर की
साधक बाधक कहना मन की झूंठी वृत्ति
बोलो किससे राग-द्वेष फिर किससे करना
शत्रु-मित्र ही जब जग में कोई न रह गया
तुम्हें जानकर जग तुमसे अनजान रह गया।।५।।

मेरी देह और वाणी यह अहंकार है
मैं इनका संचालक यह भारी विकार है
अपने कार्य निरत है जग के अणु-अणु अविरल
अणु को भी जो पलट सके किसमें इतना बल?
जड़ समेट अपनी माया काया ले जाता
चेतन ममता और अहं में घुलता जाता
इस रहस्य को जान सका न कभी अज्ञानी
अहं गला नहिं अमर अनंती बार मर गया
तुम्हें जानकर जग तुमसे अनजान रह गया।।६।।

यह पर का कर्त्तृत्व पाप है गुरुतर जग का
सब अनर्थ का मूल यही है भारी हिंसा
पर का घात सभी कहते हैं अनाचार है
किन्तु अरे पर की रक्षा भी चितविकार है
अहं रहे जो पर के जीवन की रक्षा का

महावीर दर्शन में वह भी भारी हिंसा,
क्योंकि पराये जीवन पर अधिकार पाप है,
अहं चिता में चेतन बारम्बार जल गया
तुम्हें जानकर जग तुमसे अनजान रह गया।।७।।

जीवन भर ही अरे भक्ति रस में अवगाहा
किन्तु भक्त भगवान रूप को समझ न पाया
अरे बाह्य के चाकचिक्य में ऐसा उलझा
भीतर था भगवान और बाहर से पूजा
कहता है भगवान अरे! क्यों नहीं रीझते
बीत गये युग पूजा में क्यों नहीं सीझते?
किन्तु अरे ओ! छलिया क्या यह तुझे ज्ञात है
पूजा करते तुझे विषय का ब्याल डस गया ?
तुम्हें जानकर जग तुमसे अनजान रह गया।।८।।

भक्त सदा चलता है रे! भगवान चरण पर
वीतराग का भक्त न जाता राग डगर पर
और अरे दोनों में है कितना सा अन्तर
एक चल चुका, एक चल रहा है रे! पथ पर
शक्ति तुल्य है अन्तर थोड़ा-सा पौरुष का
और आत्मा-परमात्मा में अन्तर भी क्या ?
भक्त और भगवान मुक्ति की बातें करते
मुक्ति कला यों सीख भक्त भगवान बन गया
तुम्हें जानकर जग तुमसे अनजान रह गया।।९।।

महावीर

(अतुकान्त)

(1) आज परिवर्तन क्यों!
खेल ही रहा था कल तो हास मुख मंडल पर विधर्मियों के
भाग्य के विधाता थे मूक पशुओं के कल
होम यज्ञों में उन्हें स्वर्ग पहुँचाते थे।
कमाते थे अक्षय-पुण्य
आज-सहसा ही मुख म्लान क्यों?
(2) आज कोलाहल है दश ही दिशाओं में
क्षुब्ध हुआ दिग्-दिगंत
प्राची का सूर्य आज म्लान है
सोचा लोगों ने
हैं! सूर्य है यह
इतना म्लान, इतना त्रस्त
ग्रस लिया हो हाय! जैसे राहु ने
अरे! सूर्य कहाँ
सूर्य तो छलका है आज त्रिशला की गोदी में।
(3) कंपित देवेश हुए
सोचा
हुआ है जन्म आज मध्य-लोक में
किसी पुण्यशाली का
चल पड़े सुरेन्द्र-सुर-सुरांगना
सहज दुंदुभी घोष
दे रहा चुनौती था विधर्मियों को
सर्वत्र मंगलगान
वीर का विजयनाद

सुरभित था दिग्-दिगंत
स्वर्णिम स्वर्ग आभा आज उतरी थी धरा पर ज्यों।
(4) कौन ईश अवतार हुआ था आज?
कंपित हुआ लोक जिसकी तेजस्विता से
ईश अवतार था वह? नहीं
स्वर्गों का सुरेन्द्र था क्या, देव इन्द्र जाली था क्या?
नहीं-नहीं
मात्र कर्म-भूमि का, हिंसा की भूमि का,
पैशाची वसुंधरा का
छोटा-सा बालक था वह
छोटा-सा मानव था वह।
(5) युग कैसा था किन्तु
सत्य-अहिंसा तो कर चुकी थी प्राण-त्याग
जल चुकी, मर चुकी, बुझ भी चुकी थी मानों
उठ न सकेगी कभी
मूक पशुओं का वह अहिंसात्मक सत्याग्रह
हिंसा से फलित थे स्वर्ग
धर्म के पोषण में प्राणों का शोषण था
चेतन से चेतनता त्रस्त थी पीड़ित थी।
(6) उमड़ उठे वीर अरे!
कैसी भ्रष्ट निष्ठा यह
म्लान प्रतिष्ठा यह
शान्ति चाहते हो विश्व?
स्वर्ग चाहते हो विश्व, पशुओं के प्राणों में!
सावधान हुए वीर, निर्भय, निशंक और
बढ़ चले एकाकी।

(7) हिंसक जनों पर क्या खंग था चलाया?
नहीं, हिंसा को हिंसा से मिटाना तो हिंसा है
अरे! हिंसा है हिंसक की, हिंसा पर क्षुब्ध होना
आत्मा तो प्रांजल अहिंसक चेतना है
अहिंसा है नित्य ही उसमें केलि करना
हिंसा का केन्द्र एक राग है विश्व में
राग ही हिंसा है तीर्थंकर दर्शन में
अतएव राग से अंतर को रीता कर
तत्व को कसकर स्याद्वाद की कसौटी पर
वीर-वर्द्धमान अन्तः सलिला में डुबकी ले
बहते ही चले गये
हँसते ही चले गये
कोटि-कोटि यंत्रणायें सहते ही चले गये।
(8) अन्तस् में पावनता
वचनों में माधुर्य
काय में आलौकिक शौर्य
स्तंभित थे विरोधी गण,
धन्य विश्वप्रेमी स्याद्वादी, हे आलौकिक जन!
विरोधी शान्त हुए,
हिंसा, असत्य, एकान्त, उद्भ्रान्त हुये,
पशुओं को त्राण मिला,
अहिंसा को प्राण मिला
जग को वरदान मिला
आज सफल हुआ विश्व तेरी प्रतीक्षा में
सत्य-अहिंसामय जीवन की दीक्षा में।

अरे ओ! शिखर सम्मेद अचल

अरे ओ! शिखर सम्मेद अचल !
कण-कण तेरा कितना पावन
कितना निर्मलतम !
अरे ओ! शिखर सम्मेद अचल !

ज्यों-ज्यों पथिक ऊर्ध्व गति करता गलता मान तरल हो
जाती चिर मूर्छा अनादि की चाहे चढ़ा गरल हो
अरे ओ! मानस्तंभ अटल
अरे ओ! शिखर सम्मेद अचल !

निज स्वभावरत पावन पुरुषों के भावों की गंगा
अरे! वायुमंडल में अब भी वही तरंगित अमला
अरे! धो देती मानस मल
अरे ओ! शिखर सम्मेद अचल !

झरते यहां अरे पद-पद पर अमृत के झरने
दृष्टि मात्र में ही पी लेते अन्तर्दृष्टि जिन्हें
हो न फिर क्यों अन्तर उज्ज्वल
अरे ओ! शिखर सम्मेद अचल !

रे! अतीत वैभव का देता तू उज्ज्वल आभास
तू है शाश्वत पावनता का गौरव मय इतिहास
अरे ओ! भू सौन्दर्य अटल
अरे ओ! शिखर सम्मेद अचल !

उन विभूतियों की स्मृति देती निज-वैभव-दर्शन
नहीं राग जिसका कर पाता एक पलक स्पर्शन
अरे! वह निज निगूढ़ तम घन
अरे ओ! शिखर सम्मेद अचल !

बरबस झुक जाता है मस्तक उस वैभव के आगे
जिसको पाकर चिर-दरिद्र के भाग्य अचानक जागे
अरे ओ! महामहिम भूतल
अरे ओ! शिखर सम्मेद अचल !

मिट जाते तेरी गोदी में अरे! सात ही भय
ज्ञान और श्रद्धा का होता अद्‌भुत यहां समन्वय
यही है तेरा वंदन-फल
अरे ओ! शिखर सम्मेद अचल !

एक-एक अणु भी ऐ गिरिवर! है तेरा अनमोल
निखिल-विश्व-वैभव भी उसको नहीं सकेंगे तोल
नमन शत शाश्वत सिद्धि-स्थल
अरे ओ! शिखर सम्मेद अचल !

पण्डितप्रवर टोडरमलजी के प्रति श्रद्धांजलि

सत्यनिष्ठ ओ तरुण तपस्वी
परम सौम्य सारल्य निधान
जग की पशुताओं को तुमने
दिया प्रेम का सुन्दर दान।

मोह और अज्ञान निशा से
जग में था अंधियारा छाया
शांत तपस्वी आत्म - विजेता
जब तू जग प्रांगण में आया।

निपट मूढ़ता पाखण्डों के
जग में काले बादल छाये
भोले जग के भोलेपन पर
तूने करुणा - अश्रु बहाये।

भूली और भ्रान्त जनता को
तूने 'मोक्ष प्रकाश' दिखाया
पाखण्डी दल ने तब तेरे
ऊपर निज षडयन्त्र चलाया।

साम्प्रदायिक युग का होता
तेरे अवसानों में दर्शन
बोल रहा जयपुर का कण-कण
धन्य-धन्य ओ! पुरुष पुरातन।

अमर तुम्हारे मोक्षमार्ग से
पाता अब तक विश्व प्रकाश
तेरे बलिदानों से अब तक
जीवित प्यारा जैन समाज।

चतुष्पदी एवं मुक्तक खण्ड

दया नाथ

दया नाथ मुझे मिल गये बाजार में
मैं भी पूछ बैठा क्योंजी दया कैसे पलती है
बोले! दया पालना हो मन्दिर में आओ
स्थानक में बैठकर मुँह पट्टी लगाओ
देखो यहाँ मेरी आलू की भट्टी चलती है
सड़क पर पूछते हो दया कैसे पलती है।

आदर्श

हम पावन थे और
समुज्ज्वल रहा हमारा लोकादर्श
दे जीवन विज्ञान विश्व को
रहा जगत गुरु भारत-वर्ष
जिसने पर से जीवन जोड़ा
अपनी नश्वर सत्ता रक्खी
वह पर को क्या दे सकता है
जिसने निज से ममता रक्खी

"कर्मकाण्ड की बालू के, भूधर धसकने लगे,
सदियों से सिसकते मूल्य जीवन के उभरने लगे,

रंगे सियारों की खिसकने लगी रे! धरती
स्वर्णपुरी क्षितिज पर स्वर्ण-पुरुष हँसने लगे"

छाने-छाने आती है वह आती है आने दो
जीवन की छत पर वह छाती है छाने दो
मेरे जीवन की छत है कुलिश की बनी
आने दो नीच को करिश्मा दिखाने दो।

छाने-छाने आती है वह आती है आने दो
जीवन की छत पर वह छाती है छाने दो
जीवन के अन्त का दम भरकर आई जो
मौत को मौत का मरघट बन जाने दो।

अच्छे मुमुक्षु कहते हैं, देवलाली रहें
प्रतिदिन जिनपूजन, दान, वंदन करते रहें-
सूक्ष्म तत्व सुनें, करें चिन्तन, मनन, ध्यान
फिर भी मेरे बन्धु, ध्रुव से अनजान।

धर्म जरा सी चीज समझने में युग बीते
करता रहा दुष्कर्म, मनमाने मन चीते
फटे ढोल जैसे, अब भी रीते के रीते
एक क्षण मुड़कर, अपना वैभव झाँक लेते

दुनियां कहती है कि वह कितना अच्छा है
मीठे-मीठे बोल जैसे मिश्री का बच्चा है
सरलता-सा सरल, दया, दान, तीर्थ यात्रायें
सच बोलूं बच्चू! तू अन्तर से कच्चा है।

बाहर के देवता का फंक्शन तो होता रहा
ज्योतियों के काजल से मन्दिर को धोता रहा
कैसे पूरी होंगी तेरी मन की तमन्नायें
तेरे घर का देवता तो आज तक सोता रहा।

****

लोगों की प्रशंसा से अपने को मत तोलो
दुनियां की निन्दा से घबराकर मत बोलो
निन्दा-प्रशंसा की सरकती धूप-छाया में
अन्तर में झांककर अपना मुँह खोलो।

****

सोने में मालूम नहीं क्या-क्या हो जाता है
बिल्ली दूध पीती कुत्ता चौका धो जाता है
कहता हूँ इसीलिए ऐ जमकर सोने वालों
घर में ही घर वाले का घर खो जाता है

''जगत की पीड़ा रे अज्ञान,
सौख्य रे केवल निज अवबोध
उदित रे विश्व क्षितिज पर आज
दे रहा आर्हत् पथ आलोक''।

आध्यात्मिक लोरी
अर्हंत बनो, तुम सिद्ध बनो, निर्ग्रन्थ दिगम्बर संत बनो
चिर मंगल-मुक्ति विधान करो, चैतन्य सुधारस पान करो

जगत जिसके करिश्मे देखता ठगा सा रहा
'जादूगर' कोई बोला, जीवन पट बुनता रहा,
विदेह का पैगम्बर खुदा की बातें करता
आंधी-सा आया तूफान-सा चला गया।

"लक्ष्य यदि ठीक है तो हैण्डल संभल जाता है
चल पड़ते पैडल और प्रिय मिल जाता है
साइकिल के सवारों को इसीलिए कहता हूँ
हैण्डल की संभाल में सिर फूट जाता है।"

गंदी रही आदत, की पराये से जान पहचान
उसी पर समर्पित रहे उसी का सम्मान
पराये से मिलेगा क्या, अरे ओ अकल के दुश्मन
एक बार केवल अपनी गरिमा को पहिचान

देह और आत्मा का पृथक बोध करलो
बाकी ज्ञान पेटी में बन्द कर धर लो
यही मोक्ष यही मोक्षमार्ग यही रत्नत्रय
तिरने की एक कला जल्दी से सीख लो।

पैसे से चिपकोगे तो पैसा दूर जायेगा
हवा को बांधोगे तो दम घुट जायेगा।
आती उन्मुक्त मृत्यु तत्क्षण आ जाने दो,
मृत्यु को जो रोकेगा तत्क्षण मर जायेगा।।

पतझड़ में पेड़ के पत्ते झड़ जाते हैं,
आती बरसातें तो बदन भर जाते हैं।
पुण्य और पाप ये तो मौसमी हवाएं हैं रे,
तू बेमौसम है मौसम बदल जाते हैं।।

आंख को तिनके का वास बर्दाश्त नहीं
पानी को आग का फाग बर्दाश्त नहीं।
छोड़ दो कोशिश अनमेलों को मिलाने की,
दो अनमेलों का मिलना कभी होता नहीं।

विश्वास की श्वासों पर वसुंधरा टिकी हैं
कण-कण की भाग्य रेख कुदरत ने लिखी हैं
क्षणिक सी सूरत पर मुग्ध मत हो जाना
जिन्दगी ध्रुव की ध्रुव धुरी पर खड़ी हैं

जीवन सरिता के दो अनमोल किनारे हैं
सभी इनका अहं तोड़ मुक्ति को सिधारे हैं
तुम भी दोनों का पक्ष छोड़ निश्चिंत रहना
इनको मिलाने में भगवान भी हारे हैं

सोया है सुख लोक गहल की गफलत में
ठगिनी ममता की यहाँ अंतहीन धुनी है
कहते मनीषि ओ छोडो, विष कन्या है
यह कहता बको मत, ममता मेरी पत्नी है

आत्मा भी होता है क्या? पूछते हैं कुछ युसुफ?
आंख से दिखाते नहीं, क्यों हो जाते हो चुप?
मैंने पूछा 'पूछता जो आत्मा को वह है कौन?
आंख के अंधे हैं नाम है नयनसुख

किसका करोगे विश्वास इस वसुंधरा में
जड़ की नगरियों में जाने की मनाही है-
अपना चारित्र क्यों गिराते पर की हविसों में
स्वयं ही यशस्वी बन, बेहद अमराई है

चैतन्य का स्मरण प्रतिक्षण ही करो रे!
भव के अनंत दु:ख को पल में हरो रे!
अक्षय अनंत निज सौख्य निधान पाओ,
गाओ अरे! नित इसी के गीत गाओ।।

गुरुदेव खण्ड

स्वागत गान

पूज्य गुरुदेव श्री के
प्रथम बार कोटा पदार्पण पर

पृथुल प्रतीक्षा थी ओ पावन! चिंतामणि से पाये

अरे पाप की दावा में, जिसका अन्तर झुलसा हो
और पुण्य के पागल-पन में जो खिलखिल हुलसा हो
सुप्त हुई हो जिसकी प्रज्ञा जड़ता सी छाई हो
ज्ञान-चेतना में जिसकी चिर-तन्द्रा ही छाई हो
चिर-विमुक्ति पाने को वह इनके चरणों में आये
पृथुल प्रतीक्षा थी ओ पावन! चिंतामणि से पाये।।1।।

है उत्तुंङ्ग हिमाचल-सा अति धवल-हिमानी मानस
क्षमता अद्भुत! ज्यों लोहे को कंचन करता पारस
प्रतिपल पावन प्रज्ञा से वह राग धुला जाता है
रे! विकार का जड़ बंधन भी सहज खुला जाता है
यह पीयूष-गिरा हम पामर तुझसे ही पी पाये
पृथुल प्रतीक्षा थी ओ पावन! चिंतामणि से पाये।।2।।

स्वच्छ दृष्टि से देखा करते क्षणिक विश्व का अभिनय
काल-कूट-विष भी वैसा ही जैसा धवल-सुधा-पय
सीपी-सम्पुट में मोती के दाने से उज्जवल हो
क्योंकि निरन्तर पीते अन्तर स्वाति-बिन्दु निर्मल हो
जैसी दृष्टि सृष्टि वैसी ही प्रतिपल बनती जावे
पृथुल प्रतीक्षा थी ओ पावन! चिंतामणि से पाये।।3।।

कर्तृवाद की कारा में घुटती थी युग की श्वासें
मृगतृष्णा में पड़े बिलखते थे मृग चिर के प्यासे
अनजाने किस विधि-विधान से मरु में सरिता लहरी
महानाश की बेला में तुम बनकर आये प्रहरी
अरे! भयंकर भव-भँवरों से तुमने प्राण बचाये
पृथुल प्रतीक्षा थी ओ पावन! चिंतामणि से पाये।।4।।

पूज्या विदुषी चंपा, शांता की है अकथ कहानी
अन्तर्दृष्टि बिना न कभी ये जा सकती पहिचानी
ये सौराष्ट्र वकील रामजी उच्च कोटि के प्लीडर
अब चैतन्य वकील वही सौराष्ट्र संघ के लीडर
पूज्य खेमजी, हिम्मत प्रभृति के गुण कैसे गायें
पृथुल प्रतीक्षा थी ओ पावन! चिंतामणि से पाये।।5।।

अरे! चन्द्र के नक्षत्रों-सा यह तेरा परिकर है
और तुम्हारी शशि-द्युति से ज्योतित इनका अन्तर है
ये हैं मीन, सलिल तुम हो, तुम प्राण और ये काया
स्वर्ण-पुरी में किस भव का यह चित्र सहज उतराया
हम सब दीन मात्र श्रद्धा के सुमन चरण में लाये
पृथुल प्रतीक्षा थी ओ पावन! चिंतामणि से पाये।।6।।

तूफान
पूज्य श्री कानजी स्वामी के प्रति

लो रोको तूफान चला रे,
पाखंडों के महल ढहाता
लो रोको तूफान चला रे

(1)
सह न सका जो मिथ्या-तम की
सीमा का जीवन में बंधन
रह न सका अवरूद्ध वहाँ जो
बढ़ने लगा हृदय का स्पंदन
एक दिवस अन्तर-रवि जागा
पुण्य जागरण बेला आई
जिसकी ज्ञान चेतना ने रे
चिरनिद्रा से ली अंगड़ाई
जिसकी करवट से संशय का
चिर-सिंहासन डोल चला रे
पाखंडों के......

(2)
निखिल विश्व-पथ पाये -
हिय में करुणा का संसार समेटे
अपनी एक श्वास में रे जो
संशय-तम का मरण लपेटे
जिसकी प्रज्ञा के प्रताप से

कर्त्तृवाद को थी हैरानी
अरे! मृतक को मिली चेतना
सुन जिसकी कल्याणी वाणी
अरे! मुक्ति के सुन्दर पथ का
करता जो जय-घोष चला रे
पाखंडों के......

(3)
बोली दुनिया "अरे-अरे रे !
मात पिता का धर्म न छोड़ो
जिसमें तुमने जन्म लिया है
उस पथसे अब मुंह मत मोड़ो
हरी भरी सी कीर्ति-लता है
दिग् दिगंत में व्याप्त तुम्हारी
यह लो यह लो सिंहासन लो
लेकिन रक्खो लाज हमारी
अरे तुम्हारे इस निश्चय से
भूतल पर भूचाल मचा रे
पाखंडों के......

(4)
उत्तर मिला, "धर्म-शिशु जननी
के अंचल में नहिं पलता है
और पिता की परम्परा से
बंध कर धर्म नहीं चलता है
अरे लोक की सीमाओं को
छोड़ धर्म का स्यंदन चलता

ज्ञान-चेतना के अंचल में
प्यारा धर्म निरंतर पलता
सिंहासन क्या, धर्म देह की
ममता तक को छोड़ो चला रे"
पाखंडों के......

(5)
प्राणों का भीषण संकट भी
उसका पथ नहिं मोड़ सका रे
कोटि-कोटि आंसू का वर्षण
उसका व्रत नहिं तोड़ सका रे
रे उत्तुंग हिमाचल सा
बेरोक बढ़ा वह अपने पथ पर
जिसने उसके पथ को रोका
झुका उसी का मस्तक भू पर
पर्वत ने भी उसे राह दी
खंड-खंड हो वज्र गिरा रे
पाखंडों के......

(6)
जिसको राह मिली, उसको
अब चाह रही क्या शेष बताओ
जिसको थाह मिली उसको
परवाह रही क्या शेष बताओ
उसने युग की धारा पलटी,
वह अध्यात्म-क्रान्ति का सृष्टा

एक दिव्य संदेश विश्व का
चेतन केवल ज्ञाता-दृष्टा
रे अणु-अणु की आजादी का
शंख नाद वह फूंक चला रे
पाखंडों के......

(7)
अरे वीर के जन्म दिवस पर
भूतल का अभिशाप मिट गया
अरे वीर के जन्म दिवस से
एक नया इतिहास जुड़ गया
अंधकार में युग सोता था
घुटती थी जीवन की श्वासें
पानी में भी पड़े हुए थे
अरे मीन युग-युग के प्यासे
तेरा पावन पुनर्जन्म यह
वसुधा का वरदान बना रे
पाखंडों के......

चैतन्य-विहारी

सुधा सींचते ये पावन चैतन्य-विहारी आये।।

अनजाने ही जीवन सलिला सहसा सूख चली थी
अंतर की चैतन्य वाटिका झुलसी मरूस्थली थी
लूट निखिल वैभव दरिद्रता भीषण ताण्डव करती
श्वासें थी अवरूद्ध चेतना बेसुध पड़ी सिसकती
रे मंगल मानस घट में ये संजीवन भर लाये
सुधा सींचते ये पावन चैतन्य-विहारी आये।।1।।

पुण्य-पाप का जीवन में खुलकर खिलवाड़ मचा था
और अज्ञता का प्रलयंकर सा तूफान उठा था
धंसती चेतन धरा धधकती धू-धू मिथ्या ज्वाला।
तभी तुम्हारे ज्ञान सिंधु से मिला सुधा का प्याला
करुणा निधि अभिशापों में वरदान बने तुम आये
सुधा सींचते ये पावन चैतन्य-विहारी आये।।2।।

चिर अज्ञान तमिस्रा जिसकी प्रभा मात्र से खोई
आज हृदय की विमल भूमि है कर्तृ-कर्म से रीती।
जीवन से हम थे हताश तुमने जीना सिखलाया
जीवन धन तुम मिले कि हमने पुनर्जन्म ही पाया
चिर निद्रा में गाफिल तुमने सोते आन जगाये।
सुधा सींचते ये पावन चैतन्य-विहारी आये।।3।।

अरे क्रान्ति दृष्टा! तुमने सब पलटी युग की धारा
अरे युग पुरुष तेरा जग को अद्‌भुत मिला सहारा
ओ नाविक भव सागर के तुम हमें साथ ले जाना
अरे भयंकर भव भंवरो से युग के प्राण बचाना
हम पामर केवल श्रद्धा के सुमन चरण में लाये।
सुधा सींचते ये पावन चैतन्य-विहारी आये।।4।।

हुआ वीर के संदेशों का स्वर्णपुरी में प्रत्यावर्तन

आत्मभ्रांति के अन्धकार में, गाफिल सोती ज्ञान-चेतना
नर का नर्तन पशु का कर्तन, केवल धर्म रहा था इतना।
नृत्य कर रहा स्वर्ग तुम्हारा, मानव की आंखों के आगे
तभी अचानक भारत भू के, सोये हुए भाग्य ही जागे।
रे प्राची के स्वर्ण पुरुष से वीर उदित थे विपुलाचल पर
हुआ वीर के संदेशों का स्वर्णपुरी में प्रत्यावर्तन।।1।।

तभी मोह की चिर निद्रा से, मानवता ने ली अंगड़ाई
घोर विरोधों बीच वीर ने, कर्तृवाद की जड़ें हिलाई
क्या करते अभिमान अरे तुम, ओ! जड़ता के सत्ता धारी
ज्ञान-चेतना के प्रकाश में, सभी मुक्ति के हैं अधिकारी
पर की वृत्ति देख वीर को होने लगा विश्व का दर्शन।
हुआ वीर के संदेशों का स्वर्णपुरी में प्रत्यावर्तन।।2।।

आज अरे! एकांत स्थान में, बैठा योगी अलख जगाता,
'सन्मति, कुन्द' चरण चिन्हों पर, जो प्रतिपल ही बढ़ता जाता।
अरे! 'समय' सी निधि को पाकर, अमृत-सा जिसने पी डाला
छद्‌म वेष में छद्‌म पक्ष पर, अन्तर्छद्‌म वमन कर डाला।
लक्ष शीश को पद चुंबन भी, पा न सके जिसका आकर्षण।
हुआ वीर के संदेशों का स्वर्णपुरी में प्रत्यावर्तन।।3।।

जग में किसका कौन सहारा? कौन सतत्‌ ही रहता आया?
सभी देखते आये यह तो- आया, गया, गया और आया
आने जाने में भी रहता शाश्वत एक, अखंड़ सत्य है
व्यय, उत्पाद, ध्रौव्य मय जग का, जड़-चेतन प्रत्येक द्रव्य है

यही घोषणा करता योगी "कण-कण" का स्वाधीन परिणमन
हुआ वीर के संदेशों का स्वर्णपुरी में प्रत्यावर्तन।।4।।

है कण-कण परिपूर्ण अरे! फिर किसका क्या लोगे क्या दोगे
कर्त्तापन के अहंकार में दुःख का बीज स्वयं बो लोगे
सुख की चाह अनन्ती तेरी किन्तु नहीं श्रद्धा सक्षम
जिसके पास नहीं है, उससे लेने की तो बात विलक्षण
रीते घट से प्यास बुझाने का प्रयत्न है बाल-प्रदर्शन
हुआ वीर के संदेशों का स्वर्णपुरी में प्रत्यावर्तन।।5।।

एक तत्व सिद्धान्त यही है, "मैं निज सहज भाव का कर्त्ता
अन्य शुभाशुभ जितना भी है, वह सब ही भावों की जड़ता।"
उसका बोध, उसी की श्रद्धा, सुख का केवल मूल यही है
अरे! पराये का जो आश्रय, महादुख है मरण वही है
कभी निमित्ताधीन दृष्टि ने, किया विकार का नहीं स्खलन।
हुआ वीर के संदेशों का स्वर्णपुरी में प्रत्यावर्तन।।6।।

स्वयं हिलावे हाथ अरे जो, सागर-सरिता तैर चला वह
किन्तु रहा निश्चेष्ट, मूढ़ जो, जल धारा के बीच मरा वह
स्वयं यत्न जो करता, उसका निश्चित जल है एक सहारा
जो निश्चेष्ट पड़ा रे जल में, उसका जल क्या करे बिचारा
अरे! लक्ष्य की सिद्धि सुनिश्चित, पौरुष करते रहो चिरंतन
हुआ वीर के संदेशों का स्वर्णपुरी में प्रत्यावर्तन।।7।।

श्रद्धांजलि

(पू. श्री कानजी स्वामी के प्रति)

मंगलमय संदेश तुम्हारा धरती पर छा जाये

1. मधुमय यौवन में जब जग बेचेत पड़ा सोता हो
निज पौरुष अनमोल अभागा विहँस-विहँस खोता हो
तब अन्तिम आदेश लिए वन निकल पड़े तुम योगी
कौन कह सका तुमको पाकर धन्य धरित्री होगी
धन्य 'उजबा' 'मोती' जग को तुम-सा सुत दे जावे
मंगलमय संदेश तुम्हारा धरती पर छा जाये

2. छद्म वेश में थे पर अन्तर में वैराग्य छलकता
पला कीच में है पर पंकज प्रतिपल निर्मल रहता
किन्तु स्वर्ण-पिंजर में शुक-सम विकल हो उठे उन्मन्
इसीलिए तो उस कुलिंग के तोड़ चले तुम बंधन
कौन कांच चाहे जब रत्नों की निधि ही मिलजाए
मंगलमय संदेश तुम्हारा धरती पर छा जाये

3. क्रन्दन और विरोध विडम्बन सब को पीछे छोड़ा
अचल चले तुम अपने पथ पर पीछे नहिं मुंह मोड़ा
स्वर्णपुरी के उदयाचल पर स्वर्ण-पुरुष से आये
कुन्द-समय की सुखद-रश्मि से जग-संताप मिटाये
कौन अभागा इस विहान में तंद्रिल हो सो जाये
मंगलमय संदेश तुम्हारा धरती पर छा जाये

4 कितने गहरे हो क्या सागर तुमको माप सकेगा?
स्वयं उसे अपनी लघुता का ही आभास मिलेगा
तुम जितना देते क्या उसका मोल कभी चुक पाये
नहीं-नहीं कंचन की काया भले खड़ी बिक जाये
स्वयं मुक्त होकर ही होंगे उऋण यदि हो पाये
मंगलमय संदेश तुम्हारा धरती पर छा जाये

5 ज्ञान उदधि में प्रतिपल उठती शीतल विमल तरंगे
तुम उन्मग्न निमग्न निरन्तर उसके संवेदन में
"कर्त्तृवाद के अहंकार का जिसने सत्व मिटाया
चिर-प्रच्छन्न अलौकिक प्रभु का उसने दर्शन पाया"
यह तेरी अनमोल गिरा नित मानस में उतराये
मंगलमय संदेश तुम्हारा धरती पर छा जाये

6 उदित असंख्य प्रदेश क्षितिज पर स्वर्ण पुरुष सम्मोहन
चली राग की महा-तमिस्त्रा और हुआ गो दोहन
रोम-रोम में शीतल सम रस धारा फूट चली है
कर्म श्रंखलाएं अनादि की तड़-तड़ टूट चली है
युगों बाद मधुकल्प बेलि से दुर्लभ तुम मिल पाये
मंगलमय संदेश तुम्हारा धरती पर छा जाये

7 ओ पावन! तेरे समक्ष वह कौन विरोधी आवे
इन्द्रभूति सदृश क्या उसका शीश नहीं झुक जावे
बढ़े चलो निर्भय सम्भेद शिखर के पथ पर योगी
स्वयं वज्र की दुर्दम सत्ता तुम्हें देख डोलेगी
शाश्वत सिद्ध भूमि पर तेरी विजय ध्वजा फहराये
मंगलमय संदेश तुम्हारा धरती पर छा जाये

स्वागत-गीत

जैन-दर्शन शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर समारोह कोटा में मंगलमय पदार्पण के स्वर्णिम प्रंसग पर पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी को सादर समर्पित

ये तो सौराष्ट्र का संत पधार्या जी कोटा परथी पै
पधार्या जी कोटा परथी पै, सफल होयो म्हां को जनम।
ये तो भव सिन्धु का अन्त, ये तो भव सागर का अन्त,
पधार्या जी चांबल धरती पै, पधार्या जी चांबल धरती पै,
यो भाग चाल्यो भीतर को भरम।

ये तो देसान्तर सूं आया, सीमंधर संदेशो लाया,
याँन पलटी जग की काया, मन का मिथ्या भरम मिटाया।
यो जगती ने पायो सांचो मरम, यो भाग चाल्यो भीतर को भरम।
ये तो सौराष्ट्र का संत.............

अन्धेरी छी अज्ञान निशा, काली-काली छाई या,
म्हां तो चौरासी म जा, घणां ही चक्कर खाता हा।
जद बतायो थांन सांचो मरम, यो भाग चाल्यो भीतर को भरम।
ये तो सौराष्ट्र का संत.............

दुख्यारो दुःखमा काल हरयो, धरम तो धरती में धंसग्यो,
अरे पण मारग सूधो सो आनन्द-घन छै चेतन तो।
यो जगती ने पायो सांचो मरम, सफल होयो म्हां को जनम
ये तो सौराष्ट्र का संत.............

भयंकर या भव की अटवी, म्हाँ की आशा टूट चली,
कसी रे थांकी जनम घड़ी, जाण बिजली ही चमकी।
जद जगती ने पायो सांचो मरम, यो भाग चाल्यो भीतर को भरम।
ये तो सौराष्ट्र का संत.............

यांको सूधो सो उपदेश, आत्मा ज्ञाता-दृष्टा एक,
न कर्त्ता-भोक्ता पर को रे, ऊंक पुण्य-पाप नहिं लेश।
यो जगती ने पायो सांचो मरम, यो भाग चाल्यो भीतर को भरम
ये तो सौराष्ट्र का संत.............

थांन कुंद-समय मथल्या, घणां ही ऊंडा थे उतर्‍या,
घड़ा अमृत का प्रभु भरल्या, भव का ताप सभी हरल्या।
यो जगती ने पायो सांचो मरम, यो भाग चाल्यो भीतर को भरम
ये तो सौराष्ट्र का संत.............

भाग यो भारत को खुलग्यो, कलि को शाप सभी धुलग्यो
पुरुष जो थांको सो जन्म्यो, अरे इतिहास सफल होग्यो।
हाँ बतायो थाने सांचो मरम, यो भाग चाल्यो भीतर को भरम
ये तो सौराष्ट्र का संत.............

समर्पित ये श्रद्धा का फूल, चरण की दीज्यो पावन धूल,
करो भव-ताप त्वरित निर्मूल, अहो गुरु आनन्द-सरिता-कूल।
कोटा नगरी हो गई आज, धन-धन जी म्हारा गुरूवर जी,
हाँ हाँ जी म्हारा गुरूवर जी।
सफल होयो म्हाँ को जनम, यो भाग चाल्यो भीतर को भरम
ये तो सौराष्ट्र का संत.............

पू० गुरुदेव (भाया रामलाल)

(1)

गुरुदेव धोको देग्या रे! भाया रामलाल
बना पूछ्या ही चलीग्या रे! भाया रामलाल
भाया रामलाल, म्हारा भाया श्यामलाल, म्हारा भाया हीरालाल
गुरुदेव धोको देग्या रे! भाया रामलाल

(2)

अर! कस्यो जमानो छो रे भाया, धरम धस्यो धरती में
पुण्य-पाप में मर्‍या मनखड़ा, काल पड्यो परथी में
फूटा भाग भारती भू का रे! भाया रामलाल

(3)

बातां करे बावल्या की सी, करम घणां दुख देवे
एक मनट भी मने चैन नहीं, जोर-जोर सूं रोवे
जल्दी खोज करम को मेटो रे! भाया रामलाल

(4)

थारो ही अपराध चूकतो, करम अचेतन आंधो
दोस लगावे करमां पे, बेसरम ढीटड़ो ढांढो
थन सरम जरा नहिं आवे रे! भाया रामलाल

(5)

जैन तत्व को सूरज आंथ्यो, करम कांड पै चढ़ग्या
सुद्धात्मा की बातां सुणता, म्हां बीछू सा बचक्या
भाया भांग कुंआ मं पड़गी रे! भाया रामलाल

(6)

ऊंधी-ऊंधी बातां चाले, आंधा सबसूं आगे
अमरत सी बोल्यां आतम की अरे! और सी लागे
चारूं और कागला बोले रे! भाया रामलाल

(7)

असी बगत मं गुरुजी म्हांका, सोना नगरी प्रगट्या
वाणी छूटी तत्वज्ञान की, अमरत मेघा बरस्या
जाण घटा सावणी छाई रे! भाया रामलाल

(8)

तू भगवान बड़ो छै, कोई बरसां सूं नहिं बोल्या
पहला दन ही झड़ लाग्या रे, छूट मरम थे खोल्या
यो भगवान भापड़ो भटके रे! भाया रामलाल

(9)

होणूं सो दुनियां मं होसी, थारे कांई न होवे
थारी तो पर्याय भापड़ी, छान-छान रोवे
म्हन बड़ो अचम्भो आवे रे! भाया रामलाल

(10)

लाखूं लोग बोलबा लाग्या, मूं अनादि को सूदो
केवल बात एक सांची छ, बाकी सारो ऊंधो
जाण जादू-टोणा होग्या रे! भाया रामलाल

(11)

नहीं सुहाई बात कपूतां, बेहद करी अनीती
म्हाँ निर्लज्ज दुराचार्‍यां ने, मां की साड़ी खींची
देखी करामात हुंडा की रे! भाया रामलाल

(12)

पैंतालीस बरस तक बरसी, रतनां की बरसातां
सोनानगरी झुंड उलटग्या, होनहार की बातां
खुलग्या मरम मुक्ति नगरी का रे! भाया रामलाल

(13)

जींका सुलट्या भाग भरत में, वे निहाल ही होया
म्हांका जस्या भापड़ा तो, बस अरे! बाप ने रोया
गुरुजी फूलां सा पुचकार्‍या रे! भाया रामलाल

(14)

राजकोट, सम्मेदशिखर अर, कलकत्ता , बम्बोई
अफरीका की नैरोबी में, अणहोणी सी होइ
सारो जगत झांकतो रेग्यो रे! भाया रामलाल

(15)

थां तो छोड़ चलीग्या गुरुजी म्हांके पड़ी असाता
तत्वज्ञान मं होबा लागी, ऊंधी-ऊंधी बातां
कोई धणी न धोरी रेग्यो रे! भाया रामलाल

(16)

फली म्हाँ सूं मलबा आज्यो, फेर मोक्ष मं जाज्यो,
थान म्हांका सोगण देखो, सोगण साथ नभाज्यो
थाँक पड़ी मोख की जल्दी रे! भाया रामलाल

(17)

अब तो डील बगड़ग्यो भाया मन बिल्कुल नहिं लागै
सारा जणां बखरग्या जाण, अरे लाय सी लागे
आपां सुरगां में ही चालां रे! भाया रामलाल
आपां बाधा सूं छूटंगा रे! भाया रामलाल
लारां सिवपुर भी चालंगा रे! भाया रामलाल
भाया रामलाल, म्हारा भाया श्यामलाल, म्हारा भाया हीरालाल
गुरुदेव धोको देग्या रे! भाया रामलाल
बना पूछ्या ही चलीग्या रे! भाया रामलाल

——— ★★★★★★★ ———

अनुवाद खण्ड

अमूल्य-तत्त्व-विचार

लेखक-श्रीमद् राजचन्द्रजी

बहु पुण्य-पुंज प्रसंग से, शुभ देह मानव का मिला ।
तो भी अरे ! भव चक्र का, फेरा न एक कभी टला ।। 1 ।।

सुख- प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुख जाता दूर है ।
तू क्यों भयंकर भाव-मरण, प्रवाह में चकचूर है ।। 2 ।।

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये ?
परिवार और कुटुम्ब है क्या ? वृद्धि नय पर तोलिये ।। 3 ।।

संसार का बढ़ना अरे ! नर देह की यह हार है ।
नहिं एक क्षण तुझको अरे ! इसका विवेक विचार है ।। 4 ।।

निर्दोष-सुख निर्दोष-आनन्द, लो जहाँ भी प्राप्त हो ।
यह दिव्य अन्तस्तत्व जिससे, बन्धनों से मुक्त हो ।। 5 ।।

पर-वस्तु में मूर्च्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया ।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे ! पश्चात् जिसके दुख भरा ।। 6 ।।

मैं कौन हूँ ? आया कहाँ से ? और मेरा रूप क्या ?
सम्बन्ध दुःखमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या ?।।7।।

इसका विचार विवेक पूर्वक, शान्त होकर कीजिये ।
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिये ।। 8 ।।

किसका वचन उस तत्व की, उपलब्धि में शिवभूत है ।
निर्दोष नर का वचन रे ! वह स्वानुभूति प्रसूत है ।। 9 ।।

तारो अरे ! तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिये ।
सर्वात्म में समदृष्टि दो, यह वच हृदय लख लीजिये ।। 10 ।।

नीरव-निर्झर

(भावना बत्तीसी - आचार्य अमित गति)

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणी जनों में हर्ष प्रभो।
करुणा-स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो।।1।।

यह अनन्त बल-शील आतमा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको।।2।।

सुख-दुख वैरी बन्धु वर्ग में, कांच-कनक में समता हो।
वन-उपवन, प्रासाद कुटी में, नहीं खेद, नहिं ममता हो।।3।।

जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर-पथ ही प्रभु! मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ।।4।।

एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो।।5।।

मोक्ष-मार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से।।6।।

चतुर वैद्य विष-विक्षत करता, त्यों प्रभु! मैं भी आदि उपांत।
अपनी निन्दा आलोचन से, करता हूँ पापों को शान्त।।7।।

सत्य अहिंसादिक व्रत में भी, मैने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया।।8।।

कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी पीकर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया।।9।।

मैंने छली और मायावी, हो असत्य-आचरण किया।
पर-निन्दा, गाली, चुगली जो, मुँह पर आया वमन किया।।10।।

निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल-जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे।।11।।

मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे।।12।।

दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे।।13।।

जो भव-दुःख का विध्वंसक है, विश्व-विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी-जन के ध्यानगम्य वह, बसे हृदय में देव महान।।14।।

मुक्ति-मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य-दर्शी वह, देव रहे मम हृदय समीप।।15।।

निखिल विश्व के वशीकरण वे, राग रहे ना द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूपी, परम देव मम हृदय रहे।।16।।

देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्म-कलंक-विहीन, विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र।।17।।

कर्म-कलंक अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह-तिमिर को भेद चला जो, परमशरण मुझको वह आप्त।।18।।

जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्वपर-प्रकाशी, परमशरण मुझको वह आप्त।।19।।

जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि अन्त से रहित, शान्त, शिव,परमशरण मुझको वहआप्त।।20।।

जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय-विषाद चिन्ता सब जिसके, परमशरण मुझको वह देव।।21।।

तृण, चौकी, शिल, शैलशिखर नहिं, आत्म समाधि के आसन।
संस्तर, पूजा-संघ सम्मिलन, नहीं समाधी के साधन।।22।।

इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी हैं विश्व वासना, उपादेय निर्मल आतम।।23।।

बाह्य जगत कुछ भी नहिं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चयकर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें।।24।।

अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृगतृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ।।25।।

अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान स्वभावी है।
जो कुछ बाहर है सब पर है, कर्माधीन विनाशी है।।26।।

तन से जिसका ऐक्य नहीं हो, सुत, तिय मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम-समूह रहें कैसे?।।27।।

महा कष्ट पाता जो करता, पर-पदार्थ जड़ देह संयोग।
मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़ चेतन का पूर्ण वियोग।।28।।

जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालों को छोड़।
निर्विकल्प, निर्द्वन्द आत्मा, फिर-फिर लीन उसी में हो।।29।।

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप, फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते।।30।।

अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
'पर देता है' यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी बुद्धि।।31।।

निर्मल, सत्य, शिवं सुन्दर हैं, 'अमितगति' वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण।।32।।

नियमसार का पद्यानुवाद

(1)

जीव अधिकार

नमकर अनंतोत्कृष्ट दर्शन-ज्ञानमय जिन वीर को।
कहुँ नियमसार सु केवली श्रुतकेवली परिकथित को।।1।।

है मार्ग का अरु मार्ग-फल का कथन जिन-शासन विषें।
है मार्ग मोक्षउपाय अरु निर्वाण उसका फल कहें।।2।।

जो नियम से कर्त्तव्य दर्शन-ज्ञान-व्रत यह नियम है।
यह सार पद विपरीत के परिहार हित परिकथित है।।3।।

है नियम मोक्ष-उपाय उसका फल परम निर्वाण है।
इन तीन का ही भेद पूर्वक भिन्न-भिन्न विधान है।।4।।

रे! आप्त-आगम-तत्त्व का श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
निःशेषदोषविहीन जो गुणसकलमय सो आप्त है।।5।।

उद्वेग, विस्मय, स्वेद यम, रति, मोह, चिंता, मद, जरा।
भय, दोष, राग, रु जन्म, निद्रा, रोग, खेद, क्षुधा, तृषा।।6।।

सब दोष रहित अनन्तज्ञान-दृगादि परम विभवमयी।
परमात्म है वह, किन्तु तद्विपरीत परमात्मा नहीं।।7।।

परमात्म-वाणी शुद्ध पूर्वापर रहित निर्दोष है।
आगम वही, देती वही तत्त्वार्थ का उपदेश है।।8।।

षट् द्रव्य पुद्गल, जीव, धर्म, अधर्म, कालाकाश हैं।
ये विविध गुण-पर्याय से संयुक्त षट् तत्त्वार्थ हैं।।9।।

उपयोगमय है जीव, वह उपयोग दर्शन-ज्ञान है।
ज्ञानोपयोग स्वभाव और विभाव द्विविध विधान है।।10।।

इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल वह स्वभाविक ज्ञान है।
दो विधि विभाविक-ज्ञान सम्यक् और मिथ्याज्ञान है।।11।।

मति, श्रुत, अवधि, अरु मनःपर्यय चार सम्यग्ज्ञान है।
अरु कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन मिथ्याज्ञान है।।12।।

दर्शनपयोग स्वभाव और विभाव दो विधि जानिये।
इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल, दृग्स्वभाविक मानिये।।13।।

चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन ये विभाविक दर्श हैं।
निरपेक्ष, स्वपरापेक्ष-ये पर्याय द्विविध विकल्प हैं।।14।।

तिर्यञ्च, नारकि, देव, नर पर्याय हैं वैभावि की।
पर्याय कर्मोपाधि वर्जित हैं कही स्वाभावि की ।।15।।

हैं कर्म-भूमिज, भोग-भूमिज मनुज की दो जातियाँ।
अरु सप्त पृथ्वीभेद से हैं सप्त नारक राशियाँ।।16।।

तिर्यंच चौदह भेदवाले, देव चार प्रकार के।
इन सर्व का विस्तार है, ज्ञातव्य लोकविभाग से।।17।।

है जीव कर्त्ता-भोगता जड़कर्म का व्यवहार से।
है कर्म-जन्य विभाव का कर्ता नियत नय द्वार से।।18।।

है उक्त पर्ययशून्य आत्मा द्रव्य-दृष्टि से सदा।
है उक्त पर्यायों सहित पर्याय-नय से वह कहा।।19।।

(2)
अजीव अधिकार

परमाणु एवं स्कन्ध हैं दो भेद पुद्गलद्रव्य के।
है स्कन्ध छै विधि और विविध विकल्प हैं परमाणु के।।20।।

अतिस्थूलस्थूल रु स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्म-स्थूल रु सूक्ष्म ये।
अतिसूक्ष्म, यों छै भेद पृथ्वी आदि पुद्गलस्कन्ध के।।21।।

भू, भूमिधर इत्यादि ये अतिस्थूल स्कन्ध प्रमानिये।
घृत,तैल, जल इत्यादि इनको स्थूल स्कन्ध सु जानिये।।22।।

आताप, छाया स्थूलसूक्ष्म स्कन्ध निश्चय कीजिये।
अरु स्कन्ध सूक्ष्मस्थूल चारों अक्ष से गहि लीजिये।।23।।

कार्माणवर्गण योग्य पंचम स्कन्ध सूक्ष्म स्कन्ध है।
विपरीत जो इस योग्य नहिं अतिसूक्ष्म पुद्गल स्कन्ध है।।24।।

जो हेतु धातु चतुष्क का कारण-अणु विख्यात है।
अरु स्कन्ध के अवसान में कार्याणु होता प्राप्त है।।25।।

जो आदि में भी आप है मध्यान्त में भी आप ही।
अविभाग, इन्द्रिय ग्राह्य नहिं, परमाणु सत् जानो वही।।26।।

दो स्पर्श इक रस गंध वर्ण स्वभावगुणमय है वही।
सर्वाक्षगम्य विभावगुणमय को प्रगट जिनवर कही।।27।।

पर्याय पर-निरपेक्ष जो उसको स्वभाविक जानिये।
जो स्कन्धपरिणति है उसे वैभाविकी पहिचानिये।।28।।

'परमाणु पुद्गल द्रव्य है' यह कथन निश्चयनय करे।
व्यवहारनय की रीति है, वह स्कन्ध को पुद्गल कहे।।29।।

जो जीव, पुद्गल, गमन-स्थिति में हेतु धर्मअधर्म है।
आकाश जो सब द्रव्य का अवकाश हेतुक द्रव्य है।।30।।

आवलि, समय दो भेद या भूतादि त्रयविध जानिये।
संस्थान से संख्यातगुण आवलि अतीत प्रमानिये।।31।।

रे जीव पुद्गल से समय संख्या अनन्तगुणा कही।
कालाणु लोकाकाश स्थित जो, काल निश्चय है वही ।।32।।

रे जीव पुद्गल आदि का परिणमनकारण काल है।
धर्मादि चार स्वभावगुण पर्यायवन्त त्रिकाल हैं।।33।।

विन काल ये जिनधर्म वर्णित पाँच अस्तिकाय हैं।
अरु वस्तु का वह बहु प्रदेशीपन नियम से काय है।।34।।

होते अनन्त, असंख्य, संख्य प्रदेश मूर्तिक द्रव्य के।
अरु हैं असंख्य प्रदेश आत्मा और धर्म अधर्म के।।35।।

अनसंख्य लोकाकाश के हैं, अरु अनन्त अलोक के।
नहिं काल को कायत्व है, वह इक प्रदेशी द्रव्य है।।36।।

है मूर्त पुद्गल शेष पाँचों ही अमूर्तिक द्रव्य हैं।
है जीव चेतन, शेष पाँचों चेतना-गुण-शून्य हैं।।37।।

(3)
शुद्धभाव अधिकार

है हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।
अरु कर्म से उत्पन्न गुणपर्याय से वह बाह्य है।।38।।

मानापमान, स्वभाव के नहिं स्थान होते जीव के।
होते न हर्षस्थान भी, नहिं स्थान और अहर्ष के।।39।।

नहिं प्रकृति स्थान-प्रदेश स्थान न और स्थिति-बन्धस्थान नहिं।
नहिं जीव के अनुभागस्थान तथा उदय के स्थान नहिं।।40।।

नहिं स्थान क्षायिकभाव के, क्षायोपशमिक तथा नहीं।
नहिं स्थान उपशमभाव के, होते उदय के स्थान नहिं।।41।।

चतु-गति भ्रमण नहिं, जन्म-मृत्यु न, रोग, शोक, जरा नहीं।
कुल योनि नहिं, नहिं जीवस्थान, रु मार्गणा के स्थान नहिं।।42।।

निर्दंड अरु निर्द्वंद्व निर्मम निःशरीर निराग है।
निर्मूढ़ निर्भय, निरवलंबन आत्मा निर्दोष है।।43।।

निर्ग्रंथ है, नीराग है, निःशल्य, जीव अमान है।
सब दोष रहित, अक्रोध, निर्मद जीव यह निष्काम है।।44।।

नहिं स्पर्श-रस-अरु गंध-वर्ण न, क्लीव, नर-नारी नहीं।
संस्थान संहनन सर्व ही ये भाव सब जीव को नहीं।।45।।

रस, रूप, गंध न; व्यक्त नहिं, नहिं शब्द, चेतनगुणमयी।
निर्दिष्ट नहिं संस्थान, होता जीवलिंग-ग्रहण नहीं।।46।।

है सिद्ध जैसे जीव, त्यों भवलीन संसारी वही।
गुण आठ से जो है अलंकृत जन्म-मरण-जरा नहीं।।47।।

विन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों।।48।।

व्यवहारनय से हैं कहे सब जीव के ही भाव ये।
है शुद्धनय से जीव सब भवलीन सिद्ध स्वभाव से।।49।।

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व है आदेय ही।।50।।

मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
संशय, विमोह, विभ्रान्ति विरहित ज्ञान सुज्ञानत्व है।।51।।

चल, मल, अगाढ़पने रहित श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
आदेय, हेय पदार्थ का अवबोध सुज्ञानत्व है।।52।।

जिनसूत्र समकित हेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो।
वह जान अंतर्हेतु जिसके दर्श-मोहक्षयादि हो।।53।।

सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान अरु चारित्र मोक्ष उपाय है।
व्यवहार निश्चय से अतः चारित्र मम प्रतिपाद्य है।।54।।

व्यवहारनय चारित्र में व्यवहारनय तप जानिये।
चारित्र निश्चय में तपश्चर्या नियत-नय मानिये।।55।।

(4)
व्यवहारचारित्र अधिकार

रे जानकर कुलयोनि, जीवस्थान मार्गण जीव के।
आरम्भ इनके से विरत हो प्रथमव्रत कहते उसे।।56।।

जो राग, द्वेष रु मोह से परिणाम हो मृष-भाष का।
छोड़े उसे जो साधु, होता है उसे व्रत दूसरा।।57।।

कानन, नगर या ग्राम में जो देख पर वस्तु उसे-
छोड़े ग्रहण के भाव, होता तीसरा व्रत है उसे।।58।।

जो देख रमणी रूप वांछाभाव उसमें छोड़ता।
परिणाम मैथुन-संज्ञ-वर्जित व्रत चतुर्थ यही कहा।।59।।

निरपेक्ष-भाव संयुक्त सब ही ग्रन्थ के परित्याग का।
परिणाम है व्रत पंचवां चारित्रभर वहनार का।।60।।

मुनिराज चलते मार्ग दिन में देख आगे की मही।
प्रासुक धुरा जितनी, उन्हें ही समिति ईर्या है कही।।61।।

पैशून्य, कर्कश, हास्य, परनिन्दा, प्रशंसा आत्म की।
छोड़ें कहे हितकर वचन, उनके समिति है वचन की।।62।।

आहार प्रासुक शुद्ध लें पर-दत्त कृत कारित बिना।
करते नहिं अनुमोदना मुनि समिति जिनके एषणा।।63।।

पुस्तक कमण्डल आदि निक्षेपणग्रहण करते यती।
होता प्रयत परिणाम वह आदाननिक्षेपण समिति।।64।।

जो गूढ़ प्रासुक और पर-उपरोध बिन भू पर यती-
मल त्याग करते हैं उन्हें समिति प्रतिष्ठापन कही।।65।।

कालुष्य, संज्ञा, मोह, राग, द्वेष के परिहार से।
होती मनोगुप्ति श्रमण को कथन नय व्यवहार से।।66।।

जो पापकारण चोर, भोजन, राज दारा की कथा।
एवं मृषा-परिहार यह लक्षण वचन की गुप्ति का।।67।।

मारन, प्रतारण, बंध छेदन और आकुञ्चन सभी।
करते सदा परिहार मुनिजन, गुप्ति पालें काय की।।68।।

हो राग की निवृत्ति मन से नियत मन गुप्ति वही।
होवे असत्य-निवृत्ति अथवा मौन वच गुप्ति कही ।।69।।

कायिक क्रिया निवृत्ति कायोत्सर्ग तन की गुप्ति है।
हिंसादि से निवृत्ति भी होती नियत तनगुप्ति है।।70।।

चौंतीस अतिशययुक्त, अरु घनघाति कर्म विमुक्त है।
अर्हंत श्री कैवल्यज्ञानादिक परमगुण युक्त हैं।।71।

हैं अष्ट गुण संयुक्त, आठों कर्म-बन्ध विनष्ट हैं।
लोकाग्र में जो हैं प्रतिष्ठित परम शाश्वत सिद्ध हैं।।72।।

हैं धीर गुण गंभीर अरु परिपूर्ण पंचाचार हैं।
पंचेन्द्रि-गज के दर्प-उन्मूलक निपुण आचार्य हैं।।73।।

जो रत्नत्रय से युक्त निकांक्षित्व से भरपूर हैं।
उवझाय वे जिनवर-कथित तत्वोपदेष्टा शूर हैं।।74।।

निर्ग्रन्थ हैं निर्मोह हैं व्यापार से प्रविमुक्त हैं।
हैं साधु, चउआराधना में जो सदा अनुरक्त हैं।।75।।

इस भावना में जानिये चारित्र नय व्यवहार से।
निश्चय-चरण अब मैं कहूँ निश्चयनयात्मक द्वार से।।76।।

(5)
परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार

नारक नहीं, तिर्यंच-मानव-देव पर्यय मैं नहीं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं।।77।।

मैं मार्गणा के स्थान नहिं, गुणस्थान-जीवस्थान नहिं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं।।78।।

बालक नहीं मैं, वृद्ध नहिं, नहिं युवक तिन कारण नहीं।
कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं।।79।।

मैं राग नहिं, मैं द्वेष नहिं नहिं मोह तिन कारण नहीं।
कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं।।80।।

मैं क्रोध नहिं, मैं मान नहिं, माया नहीं मैं लोभ नहिं।
कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमोदक मैं नहिं।।81।।

इस भेद के अभ्यास से माध्यस्थ हो चारित लहे।
चारित्र दृढ़ता हेतु हम प्रतिक्रमण आदिक अब कहें।।82।।

रे वचन रचना छोड़ रागद्वेष का परित्याग कर।
ध्याता निजात्मा जीव जो होता उसी को प्रतिक्रमण।।83।।

छोड़ समस्त विराधना आराधनारत जो रहे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण उसको ही कहें।।84।।

जो जीव त्याग अनाचरण आचार में स्थिरता करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे।।85।।

उन्मार्ग का कर परित्यजन जिनमार्ग में स्थिरता करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे।।86।।

कर शल्य का परित्याग मुनि निःशल्य जो वर्तन करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे।।87।।

जो साधु छोड़ अगुप्ति को त्रय-गुप्ति में विचरण करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे।।88।।

जो आर्त रौद्र विहाय वर्ते धर्म-शुक्ल सुध्यान में।
प्रतिक्रमण कहते हैं उसे जिनदेव के आख्यान में।।89।।

मिथ्यात्व आदिक भाव की की जीव ने चिर भावना।
सम्यक्त्व आदिक भाव की पर की कभी न प्रभावना।।90।।

जो जीव त्यागे सर्व मिथ्यादर्श-ज्ञान-चरित्र रे।
सम्यक्त्व-ज्ञान-चरित्र भावे प्रतिक्रमण कहते उसे।।91।

है, जीव उत्तम अर्थ, मुनि तत्रस्थ हन्ता कर्म का।
अतएव है बस ध्यान ही प्रतिक्रमण उत्तम अर्थ का।।92।।

रे साधु करता ध्यान में सब दोष का परिहार है।
अतएव ही सर्वातिचार प्रतिक्रमण यह ध्यान है।।93।।

प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण वर्णित है यथा।
होता उसे प्रतिक्रमण जो जाने तथा भावे तथा।।94।।

(6)
निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार

भावी शुभाशुभ छोड़कर तजकर वचन विस्तार रे।
जो जीव ध्याता आत्म, प्रत्याख्यान होता है उसे।।95।।

कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्ति स्वभाव जो।
मैं हूँ वही, यह चिन्तवन होता निरन्तर ज्ञानि को।।96।।

निजभाव को छोड़े नहीं, किंचित् ग्रहे परभाव नहिं।
देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिन्तन यही।।97।।

जो प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश बँधविन आत्मा।
मैं हूँ वही, यों भावता ज्ञानी करे स्थिरता वहाँ।।98।।

मैं त्याग ममता, निर्ममत्व स्वरूप में स्थिति कर रहा।
अवलम्ब मेरा आतमा अवशेष वारण कर रहा।।99।।

मम ज्ञान में है आतमा, दर्शन चरित में आतमा।
है और प्रत्याख्यान, संवर योग में भी आतमा।।100।।

मरता अकेला जीव एवं जन्म एकाकी करे।
पाता अकेला ही मरण अरु मुक्ति एकाकी करे।।101।।

दृग्ज्ञान-लक्षित और शाश्वत मात्र-आत्मा मम अरे।
अरु शेष सब संयोग लक्षित भाव मुझसे हैं परे।।102।।

जो कोइ भी दुष्चरित मेरा सर्व त्रयविधि से तजूं।
अरु त्रिविधि सामायिक चरित सब, निर्विकल्पक आचरूँ।।103।।

समता मुझे सब जीव प्रति वैर न किसी के प्रति रहा।
मैं छोड़ आशा सर्वतः धारण समाधि कर रहा।।104।।

जो शूर एवं दान्त है, अकषाय उद्यमवान है।
भव-भीरु है, होता उसे ही सुखद प्रत्याख्यान है।।105।।

यों जीव कर्म विभेद अभ्यासी रहे जो नित्य ही।
है संयमी जन नियत प्रत्याख्यान-धारण क्षम वही।106।।

(7)
परम-आलोचना अधिकार

नोकर्म,कर्म विभाव, गुण पर्याय विरहित आतमा।
ध्याता उसे, उस श्रमण को होती परम-आलोचना।।107।।

है शास्त्र में वर्णित चतुर्विधरूप में आलोचना।
आलोचना, अविकृतिकरण, अरु शुद्धता, आलुंछना।।108।।

समभाव में परिणाम स्थापे और देखो आतमा।
जिनवर वृषभ उपदेश में वह जीव है आलोचना।।109।।

जो कर्म-तरु-जड़ नाश के सामर्थ्यरूप स्वभाव है।
स्वाधीन निज समभाव आलुंछन वही परिणाम है।।110।।

निर्मलगुणाकर कर्म-विरहित अनुभवन जो आत्म का।
माध्यस्थ भावों में करे, अविकृतिकरण उसे कहा।।111।।

अर्हंत लोकालोक दृष्टा का कथन है भव्य को।
'है भाव-शुद्धि मान, माया, लोभ, मद बिन भाव जो'।।112।।

(8)
शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त अधिकार

व्रत, समिति, संयमशील, इन्द्रिय-रोध का जो भाव है।
वह भाव प्रायश्चित्त है, अरु अनवरत कर्तव्य है।।113।।

क्रोधादि आत्म-विभाव के क्षय आदि की जो भावना।
है नियत प्रायश्चित्त वह जिसमें स्वगुण की चिंतना।।114।।

अभिमान मार्दव से तथा जीते क्षमा से क्रोध को।
कौटिल्य आर्जव से तथा संतोष द्वारा लोभ को।।115।।

उत्कृष्ट निज अवबोध अथवा ज्ञान अथवा चित्त को।
धारे मुनि जो पालता वह नित्य प्रायश्चित्त को।।116।।

बहु कथन से क्या जो अनेकों कर्म-क्षय का हेतु है।
उत्तम तपश्चर्या ऋषि की सर्व प्रायश्चित्त है।।117।।

अर्जित अनन्तानन्त भव के जो शुभाशुभ कर्म है।
तप से विनश जाते, सुतप अतएव प्रायश्चित्त है।।118।।

शुद्धात्म आश्रित भाव से सब भाव का परिहार रे।
यह जीव कर सकता अतः सर्वस्व है वह ध्यान रे।।119।।

शुभ अशुभ-रचना वचन की, परित्याग कर रागादि का।
उसको नियम से है नियम जो ध्यान करता आत्म का।।120।।

परद्रव्य काया आदि से परित्याग स्थैर्य, निजात्म को।
ध्याता विकल्प-विमुक्त, उसको नियत कायोत्सर्ग हो।।121।।

(9)
परम-समाधि अधिकार

रे त्याग वचनोच्चार किरिया वीतरागी भाव से।
ध्यावे निजात्मा जो, समाधि परम होती है उसे।।122।।

संयम नियम तप से तथा रे धर्म-शुक्ल सुध्यान से-
ध्यावे निजात्मा जो परम होती समाधि है उसे।।123।।

वनवास, कायाक्लेशरूप अनेक विध उपवास से।
वा अध्ययन मौनादि से क्या! साम्य विरहित साधु के।।124।।

सावद्य-विरत, त्रिगुप्तिमय अरु पिहितइन्द्रिय जो रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे।।125।।

स्थावर तथा त्रस सर्व जीवसमूह, प्रति समता लहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे।।126।।

संयम-नियम-तप में अहो! आत्मा समीप जिसे रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे।।127।।

नहिं राग अथवा द्वेष से जो संयमी विकृति लहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ।।128।।

रे! आर्त्त-रौद्र दुध्यान का नित ही जिसे वर्जन रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे।।129।।

जो पुण्य-पाप विभावभावों का सदा वर्जन करे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे।।130।।

जो-नित्य वर्जे हास्य, अरु रति, अरति, शोकविरत रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ।।131।।

जो नित्य वर्जे भय जुगुप्सा सर्व वेद समूह रे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे।।132।।

जो नित्य उत्तम धर्म-शुक्ल सुध्यान में ही रत रहे।
स्थायी समायिक है उसे यों केवली शासन कहे।।133।।

(10)
परम-भक्ति अधिकार

सम्यक्त्व, ज्ञान चारित्र की श्रावक श्रमण भक्ति करे।
उसको कहें निर्वाण-भक्ति परम जिनवर देव रे।।134।।

जो मुक्तिगत हैं उन पुरुष की भक्ति जो गुणभेद से-
करता, वही व्यवहार से निर्वाणभक्ति वेद रे।।135।।

रे! जोड़ निज को मुक्ति पथ में भक्ति निर्वृति की करे।
अतएव वह असहाय-गुण-सम्पन्न निज आत्मा वरे।।136।।

रागादि के परिहार में जो साधु जोड़े आतमा।
है योग की भक्ति उसे, नहिं अन्य को सम्भावना।।137।।

सब ही विकल्प अभाव में जो साधु जोड़े आतमा।
है योग की भक्ति उसे, नहिं अन्य को सम्भावना।।138।।

विपरीत आग्रह छोड़कर श्री जिन कथित जो तत्त्व हैं-
जोड़े वहाँ निज आतमा, निजभाव उसका योग है।।139।।

वृषभादि जिनवर भक्ति उत्तम इस तरह कर योग की।
निर्वृति सुख पाया अतः कर भक्ति उत्तम योग की।।140।।

(11)

निश्चय-परमावश्यक अधिकार

नहिं अन्यवश जो जीव आवश्यक करम होता उसे।
यह कर्म-नाशक योग ही निर्वाणमार्ग प्रसिद्ध रे।।141।।

जो वश नहिं वह "अवश" आवश्यक अवश का कर्म है।
वह युक्ति है वह यत्न है, निरवयव कर्ता धर्म है।।142।।

वर्ते अशुभ परिणाम में वह श्रमण है वश अन्य के।
अतएव आवश्यक-स्वरूप न कर्म होता है उसे ।।143।।

संयत चरे शुभभाव में वह श्रमण है वश अन्य के।
अतएव आवश्यक-स्वरूप न कर्म होता है उसे।।144।।

जो जोड़ता चित द्रव्य-गुण-पर्याय-चिन्तन में अरे!
रे मोह-विरहित-श्रमण कहते अन्य के वश ही उसे।।145।।

जो छोड़कर परभाव ध्यावे शुद्ध निर्मल आत्म रे।
वह आत्मवश है श्रमण, आवश्यक करम होता उसे ।।146।।

आवश्यका कांक्षी हुआ तू स्थैर्य स्वात्मा में करे।
होता इसी से जीव सामायिक सुगुण सम्पूर्ण रे।।147।।

रे श्रमण आवश्यक-रहित चारित्र से प्रभ्रष्ट है।
अतएव आवश्यक करम पूर्वोक्त विधि से इष्ट है।।148।।

रे साधु आवश्यक-सहित वह अन्तरात्मा जानिये।
इससे रहित हो साधु जो बहिरातमा पहिचानिये।।149।।

जो बाह्य अन्तर जल्प में वर्ते वही बहिरातमा।
जो जल्प में वर्ते नहिं वह जीव अन्तरआत्मा।।150।।

रे धर्म शुक्ल सुध्यान परिणत अन्तरात्मा जानिये।
अरु ध्यान विरहित श्रमण को बहिरातमा पहिचानिये।।151।।

प्रतिक्रमण आदिक्रिया तथा चारित्रनिश्चय आचरे।
अतएव मुनि वह वीतराग-चरित्र में स्थिरता करे।।152।।

रे वचनमय प्रतिक्रमण, वाचिक-नियम, प्रत्याख्यान ये।
आलोचना वाचिक सभी को जान तू स्वाध्याय रे।।153।।

जो कर सको तो ध्यानमय प्रतिक्रमण आदिक कीजिये।
यदि शक्ति हो नहिं तो अरे श्रद्धान निश्चय कीजिये।।154।।

पूरा परख प्रतिक्रमण आदिक को परम जिन सूत्र में।
रे साधिये निज कार्य अविरल साधु! रत व्रत मौन में।।155।।

हैं जीव नाना, कर्म नाना, लब्धि नाना विध कही।
अतएव है स्व-पर समय के साथ वर्जित वाद भी।।156।।

निधि पा...मनुज तत्फल वतन में गुप्त रह ज्यों भोगता।
त्यों छोड़ परजन-संग ज्ञानी ज्ञान निधि को भोगता।।157।।

यों सर्व पौराणिक पुरुष आवश्यकों की विधि धरी।
पाकर अरे अप्रमत्त स्थान हुए नियत प्रभु केवली।।158।।

(12)
शुद्धोपयोग अधिकार

व्यवहार से प्रभु केवली सब जानते अरु देखते।
निश्चय नयात्मक द्वार से निज आत्म को प्रभु पेखते।।159।।

ज्यों ताप और प्रकाश रवि के एक सँग ही वर्तते।
त्यों केवली को ज्ञानदर्शन एक साथ प्रवर्तते।।160।।

दर्शन प्रकाशक आत्म का पर का प्रकाशक ज्ञान है।
निज-पर प्रकाशक आत्मा, रे यह विरुद्ध विधान है।।161।।

पर ही प्रकाशे ज्ञान तो हो ज्ञान से दृग् भिन्न रे।
"परद्रव्यगत नहिं दर्श!" वर्णित पूर्व तब मंतव्य रे।।162।।

पर ही प्रकाशे जीव तो हो आत्म से दृग् भिन्न रे।
"परद्रव्यगत नहिं दर्श," वर्णित पूर्व तव मंतव्य रे।।163।।

व्यवहार से है ज्ञान पर-गत दर्श भी अतएव है।
व्यवहार से है जीव पर-गत दर्श भी अतएव है।।164।।

है ज्ञान निश्चय निज-प्रकाशक इसलिये त्यों दर्श है।
है जीव निश्चय-निजप्रकाशक इसलिये त्यों दर्श है।।165।।

प्रभु केवली निजरूप देखें और लोकालोक ना।
यदि कोइ यों कहता अरे उसमें कहो है दोष क्या ।।166।।

जो मूर्त और अमूर्त जड़ चेतन स्वपर सब द्रव्य हैं।
देखे उन्हें उसको अतीन्द्रिय ज्ञान है प्रत्यक्ष है।।167।।

जो विविध गुण पर्याय से संयुक्त सारी सृष्टि है।
देखे न जो सम्यक् प्रकार परोक्ष रे वह दृष्टि है।।168।।

भगवान केवलि लोक और अलोक जाने, आत्म-ना।
यदि कोइ यों कहता अरे उसमें कहो है दोष क्या।।169।।

है ज्ञान जीव स्वरूप इससे जीव जाने जीव को।
निज को न जाने ज्ञान तो वह आतमा से भिन्न हो।।170।।

संदेह नहिं, है ज्ञान आत्मा, आतमा है ज्ञान रे।
अतएव निज पर के प्रकाशक ज्ञान-दर्शन मान रे।।171।।

जानें तथा देखें तदपि इच्छा बिना भगवान हैं।
अतएव केवलज्ञानी वे अतएव ही निर्बन्ध हैं।।172।।

रे बन्ध कारण जीव को परिणामपूर्वक वचन हैं।
है बन्ध ज्ञानी को नहीं परिणाम विरहित वचन है।।173।।

है बन्ध कारण जीव को इच्छा सहित वाणी अरे।
इच्छा रहित वाणी अतः ही बन्ध नहिं ज्ञानी करे।।174।।

अभिलाषयुक्त विहार, आसन, स्थान जिनवरको नहीं।
निर्बन्ध इससे, बन्ध करता मोह-वश साक्षार्थ ही।।175।।

हो आयु क्षय से शेष सब ही कर्म-प्रकृति विनाश रे।
सत्वर समय में पहुँचते अर्हन्त-प्रभु लोकाग्र रे।।176।।

विन कर्म, परम, विशुद्ध जन्म, जरा, मरण से हीन है।
ज्ञानादि चार स्वभावमय अक्षय अछेद, अछीन है।।177।।

निर्बाध,अनुपम अरु अतीन्द्रिय, पुण्यपापविहीन है।
निश्चल, निरालम्बन,अमर पुनरागमन से हीन है।।178।।

दुख सुख नहीं पीड़ा जहाँ नहिं और बाधा है नहीं।
नहिं जन्म है, नहिं मरण है, निर्वाण जानो रे वही ।।179।।

इन्द्रिय जहाँ नहिं मोह नहिं, उपसर्ग, विस्मय भी नहीं।
निद्रा, क्षुधा, तृष्णा नहीं निर्वाण जानो रे वही।।180।।

रे कर्म नहिं नोकर्म, चिंता, आर्त-रौद्र जहाँ नहीं।
है धर्म-शुक्ल सु ध्यान नहिं, निर्वाण जानो रे वही।।181।।

दृग् ज्ञान केवल, सौख्य केवल और केवल वीर्यता।
होते उन्हें सप्रदेशता, अस्तित्व, मूर्ति-विहीनता।।182।।

निर्वाण ही तो सिद्ध है, है सिद्ध ही निर्वाण रे।
हो कर्म से प्रविमुक्त आत्मा पहुँचता लोकान्त रे।।183।।

जानो वहीं तक जीव पुद्गल-गति, जहाँ धर्मास्ति है।
धर्मास्तिकाय अभाव में आगे गमन की नास्ति है।।184।।

जिनदेव-प्रवचन-भक्ति बल से नियम, तत्फल में कहे।
यदि हो कहीं, समयज्ञ पूर्वापर विरोध सुधारिये।।185।।

जो कोइ सुन्दर मार्ग की निन्दा करे मात्सर्य में।
सुनकर वचन उसके अभक्ति न कीजिये जिनमार्ग में।।186।।

सब दोष पूर्वापर रहित उपदेश श्री जिनदेव का।
मैं जान, अपनी भावना हित नियमसार सुश्रुत रचा।।187।।

पूजन खण्ड

देव-शास्त्र-गुरु पूजन

स्थापना

केवल-रवि-किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर।
उस श्री जिनवाणी में होता, तत्वों का सुन्दरतम दर्शन।।
सद्दर्शन-बोध-चरण-पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण।
उन देव परमआगम गुरु को, शत-शत वन्दन शत-शत वन्दन।।

जल

इन्द्रिय के भोग मधुर-विष सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहीं पाया।।
मैं भूल स्वयं निज वैभव को, पर-ममता में अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक्-नीर लिये, मिथ्यामल धोने आया हूँ।।

चन्दन

जड़ चेतन की सब परिणति प्रभु! अपने-अपने में होती है।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूँठी मन की वृत्ती है।।
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु! चन्दन सम, शीतलता पाने आया है।।

अक्षत

उज्ज्वल हूँ कुन्द-धवल हूँ प्रभु! पर से न लगा हूँ किंचित भी।
फिर भी अनुकूल लगें उन पर, करता अभिमान निरन्तर ही।।
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खण्डित काया।
निज शाश्वत अक्षयनिधि पाने, अब दास चरण रज में आया।।

पुष्प

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं।
निज अन्तर का प्रभु ! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं ।।
चिंतन कुछ फिर संभाषण कुछ, वृत्ति कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ, जो अन्तर का कालुष धोती है।।

नैवेद्य

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु ! भूख न मेरी शान्त हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही ।।
युग-युग से इच्छा सागर में, प्रभु ! गोते खाता आया हूँ।
चरणों मे व्यंजन अर्पित कर, अनुपम रस पीने आया हूँ।।

दीप

मेरे चैतन्य-सदन में प्रभु! चिर व्याप्त भयंकर अंधियारा।
श्रुत-दीप बुझा हे करुणानिधि! बीती नहिं कष्टों की कारा।।
अतएव प्रभो! यह ज्ञान-प्रतीक, समर्पित करने आया हूँ।
तेरी अंतर लौ से निज अन्तर-दीप जलाने आया हूँ।।

धूप

जड़ कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी।
मैं रागी-द्वेषी हो लेता, जब परिणति होती है जड़ की।।
यों भाव-करम या भाव-मरण, सदियों से करता आया हूँ।
निज अनुपम गंध-अनल से प्रभु, पर-गंध जलाने आया हूँ।।

फल

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल-व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है।।

मैं शान्त निराकुल चेतन हूँ, है मुक्ति-रमा सहचर मेरी।
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु! सार्थक फल पूजा तेरी।।

अर्घ्य

क्षण भर निज-रस को पी चेतन, मिथ्या-मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है।।
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल रवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अर्हन्त अवस्था है।।
यह अर्घ समर्पण करके प्रभु ! निज गुण का अर्घ बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु ! अर्हन्त अवस्था पाऊँगा।।

जयमाला

भव वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा।।

बारह भावना

झूँठे जग के सपने सारे, झूँठी मन की सब आशायें।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षण-भंगुर पल में मुरझायें।।

सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृतकाया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या।।

संसार महा दुख-सागर के, प्रभु दुखमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षण भर भी, कंचन-कामिनि प्रासादों में।।

मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते।।

मेरे न हुए ये, मैं इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज सम रस पीने वाला हूँ।।

जिसके श्रृंगारों में मेरा, यह मँहगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता।।

दिन-रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस-वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता।।

शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल।।

फिर तप की शोधक वन्हि जगे, कर्मों की कड़ियां टूट पड़ें।
सर्वाङ्ग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें।।

हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकांत बनें फिर हमको क्या।।

जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो! दुर्नय तम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर-मोह विनश जावे।।
चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी।।

देव-स्तवन

चरणों में आया हूँ प्रभुवर! शीतलता मुझको मिल जावे।
मुरझाई ज्ञान-लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे।।

सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जावेगी इच्छा ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानों पावक में घी डाला।।

तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय-सुख को ही अभिलाषा।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा।।

तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव झुके तव चरणों में, जग के माणिक मोती सारे।।

शास्त्र-स्तवन

स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं।।

गुरु-स्तवन

हे गुरुवर! शाश्वत सुख-दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है।।

जब जग विषयों मे रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विष-कंटक बोता हो।।

हो अर्द्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्वों का चिन्तन करते हो।।

करते तप शैल-नदी-तट पर, तरु-तल वर्षा की झड़ियों में।
समता-रस पान किया करते, सुख-दुःख दोनों की घड़ियों में।।

अन्तर् ज्वाला हरती वाणी, मानों झड़ती हों फुलझड़ियाँ।
भव-बन्धन तड़-तड़ टूट पड़ें, खिल जावें अन्तर की कलियाँ।।

तुम-सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियाँ।
दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ।।

हे निर्मल देव! तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञान-दीप आगम! प्रणाम।
हे शान्ति त्याग के मूर्तिमान, शिव-पथ-पंथी गुरुवर! प्रणाम।।

सिद्ध पूजन

स्थापना

निज वज्र पौरुष से प्रभो! अन्तर-कलुष सब हर लिये,
प्रांजल प्रदेश-प्रदेश में, पीयूष निर्झर झर गये.
सर्वोच्च हो अतएव बसते लोक के उस शिखर रे!
तुम को हृदय में स्थाप, मणि-मुक्ता चरण को चूमते.

जल

शुद्धातम-सा परिशुद्ध प्रभो! यह निर्मल नीर चरण लाया,
मैं पीड़ित निर्मम ममता से, अब इसका अंतिम दिन आया.
तुम तो प्रभु अंतर्लीन हुए, तोड़े कृत्रिम सम्बन्ध सभी,
मेरे जीवन-धन तुमको पा, मेरी पहली अनुभूति जगी.

चन्दन

मेरे चैतन्य-सदन में प्रभु! धू-धू क्रोधानल जलता है,
अज्ञान-अमा के अंचल में, जो छिपकर पल-पल पलता है.
प्रभु ! जहां क्रोध का स्पर्श नहीं, तुम बसो मलय की महकों में,
मैं इसीलिए मलयज लाया क्रोधासुर भागे पलकों में.

अक्षत

अधिपति प्रभु! धवल भवन के हो, और धवल तुम्हारा अन्तस्तल,
अंतर के क्षत सब विक्षत कर, उभरा स्वर्णिम सौंदर्य विमल.
मैं महा मान से क्षत-विक्षत, हूँ खंड-खंड लोकांत-विभो
मेरे मिट्टी के जीवन में, प्रभु! अक्षत की गरिमा भर दो.

पुष्प

चैतन्य-सुरभि की पुष्प वाटिका, में विहार नित करते हो,
माया की छाया रंच नहीं, हर बिन्दु सुधा की पीते हो,
निष्काम प्रवाहित हर हिलोर, क्या काम काम की ज्वाला से.
प्रत्येक प्रदेश प्रमत्त हुआ, पाताल मधु मधुशाला से.

नैवेद्य

यह क्षुधा देह का धर्म प्रभो ! इसकी पहिचान कभी न हुई,
हर पल तन में ही तन्मयता, क्षुत्-तृष्णा अविरल पीन हुई.
आक्रमण क्षुधा का सह्य नहीं, अतएव लिये हैं व्यंजन ये,
सत्वर तृष्णा को तोड़ प्रभो ! लो, हम आनंद - भवन पहुंचे.

दीप

विज्ञान नगर के वैज्ञानिक, तेरी प्रयोग शाला विस्मय,
कैवल्य-कला में उमड़ पड़ा, सम्पूर्ण विश्व का ही वैभव.
पर तुम तो उससे अति विरक्त, नित निरखा करते निज निधियां,
अतएव प्रतीक प्रदीप लिये, मैं मना रहा दीपावलियां.

धूप

तेरा प्रासाद महकता प्रभु! अति दिव्य दशांगी धूपों से,
अतएव निकट नहिं आ पाते, कर्मों के कीट - पतंग अरे.
यह धूप सुरभि-निर्झरणी, मेरा पर्यावरण विशुद्ध हुआ,
छक गया योग-निद्रा में प्रभु! सर्वांग अमी है बरस रहा.

फल

निज लीन परम स्वाधीन बसो, प्रभु! तुम सुरम्य शिव-नगरी में,
प्रति पल बरसात गगन से हो, रसपान करो शिव गगरी में.
ये सुरतरूओं के फल साक्षी, यह भव-संतति का अंतिम क्षण,
प्रभु ! मेरे मंडप में आओ, है आज मुक्ति का उद्घाटन.

अर्घ

तेरे विकीर्ण गुण सारे प्रभु ! मुक्ता-मोदक से सघन हुए,
अतएव रसास्वादन करते, रे! घनीभूत अनुभूति लिये.
हे नाथ ! मुझे भी अब प्रतिक्षण, निज अंतर-वैभव की मस्ती,
है आज अर्घ की सार्थकता, तेरी अस्ति मेरी बस्ती.

जयमाल

चिन्मय हो, चिद्रूप प्रभु ! ज्ञाता मात्र चिदेश,
शोध-प्रबन्ध चिदात्म के, सृष्टा तुम ही एक.

जगाया तुमने कितनी बार, हुआ नहिं चिर-निद्रा का अंत,
मदिर सम्मोहन ममता का, अरे! बेचेत पड़ा मैं सन्त.

घोर तम छाया चारों ओर, नहीं निज सत्ता की पहिचान,
निखिल जड़ता दिखती सप्राण, चेतना अपने से अनजान.

ज्ञान की प्रति पल उठे तरंग, झांकता उसमें आतमराम,
अरे ! आबाल सभी गोपाल, सुलभ सबको चिन्मय अभिराम.

किंतु पर सत्ता में प्रतिबद्ध, कीर-मर्कट-सी गहल अनन्त,
अरे ! पाकर खोया भगवान, न देखा मैंने कभी बसन्त.

नहीं देखा निज शाश्वत देव, रही क्षणिका पर्यय की प्रीति,
क्षम्य कैसे हों ये अपराध? प्रकृति की यही सनातन रीति.

अतः जड़ कर्मों की जंजीर, पड़ी मेरे सर्वात्म प्रदेश,
और फिर नरक-निगोदों बीच, हुए सब निर्णय हे सर्वेश.

घटा घन विपदा की बरसी, कि टूटी शंपा मेरे शीश,
नरक में पारद-सा तन टूक, निगोदों मध्य अनंती मीच.

करें क्या स्वर्ग सुखों की बात, वहां की कैसी अद्भुत टेव,
अंत में बिलखे छह-छह मास, कहें हम कैसे उसको देव.

दशा चारों गति की दयनीय, दया का किन्तु न यहां विधान,
शरण जो अपराधी को दे अरे! अपराधी वह भगवान.

"अरे! मिट्टी की काया बीच, महकता चिन्मय भिन्न अतीव,
शुभाशुभ की जड़ता तो दूर, पराया ज्ञान वहाँ परकीय.

अहो ! 'चित्' परम अकर्तानाथ्, अरे ! वह निष्क्रिय तत्व विशेष,
अपरिमित अक्षय वैभव-कोष" सभी ज्ञानी का यह परिवेश.

बताये मर्म अरे ! यह कौन, तुम्हारे बिन वैदेही नाथ ?
विधाता शिव-पथ के तुम एक, पड़ा मैं तस्कर दल के हाथ.

किया तुमने जीवन का शिल्प, खिरे सब मोह कर्म और गात
तुम्हारा पौरुष झंझावात झड़ गये पीले-पीले पात.
नहीं प्रज्ञा-आवर्तन शेष, हुए सब आवागमन अशेष,
अरे प्रभु ! चिर-समाधि में लीन, एक में बसते आप अनेक.

तुम्हारा चित्-प्रकाश कैवल्य, कहें तुम ज्ञायक लोकालोक,
अहो ! बस ज्ञान जहां हो लीन, वही है ज्ञेय, वही है भोग.

योग-चांचल्य हुआ अवरूद्ध, सकल चैतन्य निकल निष्कंप,
अरे! ओ योग रहित योगीश ! रहो यों काल अनंतानंत.

जीव कारण-परमात्म त्रिकाल, वही है अंतस्तत्व अखंड,
तुम्हें प्रभु ! रहा वही अवलंब, कार्य परमात्म हुए निर्बन्ध.

अहो ! निखरा कांचन चैतन्य, खिले सब आठों कमल पुनीत,
अतीन्द्रिय सौख्य चिरंतन भोग, करो तुम धवल महल के बीच.

उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बंधन नाथ !
अरे ! तेरी सुख-शय्या बीच, होगा मेरा प्रथम प्रभात.

प्रभो ! बीती विभावरी आज, हुआ अरूणोदय शीतल छांव,
झूमते शांति-लता के कुंज, चलें प्रभु ! अब अपने उस गांव.

चिर-विलास चिद्ब्रह्म में, चिर- निमग्न भगवंत,
द्रव्य-भाव स्तुति से प्रभो ! वंदन तुम्हे अनंत.

नैतिक खण्ड

15 अगस्त

भारत की स्वतन्त्रता
एक आश्चर्य था विश्व का अभूतपूर्व
बात क्या थी? सहसा ही गौरांग चले गये
छोड़ स्वयमेव इस सोने की चिड़िया को
सम्भव भी था क्या यह? स्वप्न भी किसी को
था क्या? पराधीनता की वे बेड़ियां स्वयं
ही तड़क गयी और कारागारों के काले तार
झंकृत हो उठे और खुल गये स्वयं ही
कल्पना किसी को थी क्या?
सिंह के मुख से मृग जीवित निकल जायगा

जादू था या टोना या किसी निर्जन के निष्ठुर
कोने से कोई मंत्र पाठ करता था
पुण्य पूत मानव क्या?
बात फिर क्या थी कि सदियों से सोई
पराधीनता, तमिस्त्रा तो जाग चली
भागचली अर्धरात्रि को ही
और स्वाधीनता का पुण्य-दिनकर उदित हुआ
अर्ध रात्रि को ही
जब स्वर्णिम उषा के उस मंगलमय प्रभात में
शीतल समीरण की स्वच्छन्द लहरों में
गगन की गलियों में
तिरंगा लहराने लगा
और यह स्वतन्त्रता!
विश्व इतिहास की अभूत-पूर्व घटना थी

राम और रावण देखे
कृष्ण और कंस देखे
देखा एक रक्त रंजित महाभारत-कुरूक्षेत्र भी तो
विजय सभी को मिली
तब तक न मिली जब तक
रक्त की बूंदों से वसुधा ना रंगी गयी

किन्तु यह आजादी
रक्त-पान नहीं रक्त-दान पर खड़ी थी दृढ़

जब कहते थे शहीद
और देते थे चुनौती
लो, ले लो रक्त ले लो
ले लो जितना तुम चाहो पर
मेरा प्रिय देश, मेरी आजादी दे दो मुझे

एक ठठरी का था त्याग तपस्या
वह हरिजन बस्ती में बैठा, राम के मंत्र द्वारा
करता था सत्य, अहिंसा की साधना

अहिंसा की साधना
जिसके पुण्य-बल पर साम्राज्य हिल जाते हैं,
और दासता रक्त बूंदों से विनिर्मित भवन
ढहने लगते हैं मानो ज्वालामुखी जागा हो
स्वयमेव कांप उठती है साम्राज्य शाही
जलने लगती है मानो अपनी ही आग से
अत्याचारी का हृदय स्वयं परिवर्तित होता

रक्त भी पिये तो बोलो पीता रहेगा कब तक
"निश्चित है अंत में हृदय तो बदल जाता है
और झुक जाता है अहिंसक के चरणों में"

यह इतिहास भारत की स्वतंत्रता का
स्मृति होती है बारबार बीते दिनों की

एक वह मानव है देश का भगतसिंह
विहँस-विहँस जो चढ़ जाता फांसी पर
एक वह मानव है निर्मम नृशंस जो
विहँस-विहँस फांसी दे देता न्याय को
और उस आजादी को फांसी दे देता वह
जिसकी भिक्षा पर वह जीवन बिताता है

अहिंसा की क्रान्ति खत्म करती इस विषमता को
और सूत्रपात करती है रामराज्य का
जिसकी छाया में जीवन पाता है मानव
पर जीवन स्वयं का नहीं
जीवन एक राष्ट्र की थाती बन जाता है

लोग कहते हैं हम भूखों मरते हैं
अरे! भूख और प्यास की बातें करते हो क्या?
आजादी की रक्षा में जिंदा जल जाते और
सम्पूर्ण राष्ट्र का जीवन एक ओर
एक ओर यदि आजादी को तोलने चलोगे तो भी
आजादी का पलड़ा तो हिल न सकेगा रंच
उठ न सकेगा रंच
एक राष्ट्र ही क्या विश्व को भी यदि तोल लोगे
आजादी का पलड़ा तो भारी पड़ जायेगा

स्वाधीन शासन हमें चाहिए अनूठा एक
श्रम के कणों पर केवल जिसका जीवन हो
श्रम का एक कण कोई मोल क्या करेगा उसका
पर्वत पर छिड़क दे तो सोना बन जाता है

पूंजी और श्रम का न वर्ग संभव हो फिर
मानव गुंथ जाय फिर एक सूत्र में
कीमती मोतियों सा
जिसमें न कोई प्रथम और अन्तिम न कोई
सभी प्रथम और सभी अंतिम रहेंगे तो
क्रान्ति हिंसा की फिर क्यों कर खड़ी होगी
और विध्वंस क्यों कर होगा मानवता का

आज हम देश को उठाने के प्रयास की
प्रतिज्ञा से बद्ध होवें
छूट चले स्वार्थ और कालुष बहावें सब
शान्ति की शीतल और स्वच्छन्द वायु फिर
बहने लगे जिसमें श्वास ले-ले कर जीते हों
और जीवन देते हों लघु प्राणी को भी
यह है स्वतन्त्रता
रामराज्य का स्वप्न साकार होता जहां
जिसमें जीने का अधिकार सब ही को है
तब हम गावें गीत
विश्व को सुनावें अरे!
कौन चाहता है जीवन ?
जीवन जो चाहता है अन्य को जीवन दे
सत्य अहिंसा का यही मूल-मंत्र है।

प्रेयसि

प्रेयसि! अब काम वासनाओं को
मिट्टी में मिल जाने दो
अब तो इस मादक यौवन को भी
थोड़ा सफल बनाने दो।।1।।

मधुमय प्रेयसि क्या आकर
इन अधरों की मुस्कानों से
निज मंत्र मुग्ध कोकिल स्वर से
जिन क्रीड़ाओं के दानो से ।।2।।

अपने सुरभित क्रीड़ा विलसित
उन घ्रणित विलासी स्थानों से
क्यों हरती मेरा चित्त प्रिये
मादकता के अरमानों से ।।3।।

अब नहीं जमाना भोगों का
अब इन भोगों को रोने दो
जिसने चूसा है खून जरा
उनको भी भूखों मरने दो ।।4।।

है हेय विलासी जीवन
छोड़ो अधरों की मुस्कानों को
मिटा दो मादकता के अरमान
गुंजा दो जय के नारों को।।5।।

अब हो स्वराज्य का आह्वानन्
उसकी मादक क्रीड़ायें
बलिदान हमारा मार्ग और
स्वाधीन हमारी क्रीड़ायें।।6।।

अब प्रणय हमारा हो प्रेयसि
इस आजादी के आँगन में
तन के बलिदान यदि होवें
हम मिलें स्वर्ग के प्रांगण में।।7।।

अब इस हिंसा की ज्वाला में
आजादी का सोना परखो
पहनो आजादी का कंगन
म्लेच्छों के अत्याचार दलो ।।8।।

प्रणय की क्रीड़ायें अब हों प्रेयसि
परिवर्तित देश वीरता में
दुष्टों के हत्याकाण्डों का हो
अंत स्वदेश धीरता में ।।9।।

सत्ताधीशों के ये ताण्डव
स्वाधीन लपट में होवें क्लान्त
उनके भूखे अरमान सभी
दीनों की निश्वासों में शांत ।।10।।

दीनों की आह हलाहल से
उनके तन में वह आग लगे
वे अपने घर का रस्ता लें
प्यारे स्वदेश के भाग्य जगें।।11।

सत्ता के दुष्ट अधीशों के
ढह जाँय सभी प्रासाद बड़े
वे माता की रज में लौटें
फिर झोपड़ियों के भाग्य जगें।।12।।

दीनों की जर्जर झोपड़ियाँ
कृषकों के रक्त-प्रवाहों से
छिद्रित होकर हैं रोती उन
दुष्टों की दुष्ट दुराहों से।।13।।

कृषकों के अश्रु प्रवाहों से
जब ये कातर हो जाती हैं
भीषण पावस की रजनी में
छिद्रित हो अश्रु गिराती हैं।।14।।

पर अब रोने के दिवस नहीं
झोपड़ियों क्षुब्ध न हो जाओ
विघ्नों का है आव्हान अरे
आओ कुछ बल अजमा जाओ।।15।।

प्रासाद गगन चुम्बी जिनमें
ईटों की प्रबल भित्तियाँ हैं
वे ईटें दीन किसानों की
जंघा की प्रबल अस्थियाँ हैं ।।16।।

उन्हीं का चूसा जाता खून
आज जो जनता के आधार
उन्हीं की जूठन खाकर दुष्ट
उन्हीं पर करते अत्याचार।।17।।

सह-सह कर हम भी बाध्य हुये
वह छिपी शक्ति दिखलाने को
'वे स्वामी हैं या सेवक' इसका
पाठ उन्हें सिखलाने को।।18।।

शस्त्रों की हमको चाह नहीं
हैं आहें ही ज्वालायें
दुष्टों से बदला लेंगी केवल
भारत माँ की बालायें ।।19।।

अब नहिं विलास का समय प्रिये
तुम भी हो माँ की ही सन्तान
बस शान हमारी है हम होवें
माँ की रक्षा में बलिदान ।।20।।

आदमी

आदमी कहते हैं,
आदमी के पास हृदय होता है
बल्कि जिसके पास हृदय होता है
उसे आदमी कहते हैं

मैंने कहा "सुना मैंने भी
स्वास्थ्य की किताबों में भी बहुत पढ़ा है
और अस्पताल की दीवारों पर
झूलते हुए देखे हैं उसके चित्र
काफी नरम होता है वह
इतना नरम कि जैसे
यूं ही बह जाने वाली मिट्टी
अपनी नरमाई की सुरक्षा के लिए
शरीर की कठोर तम पर्तों के भीतर
रहना होता है उसे"

तभी मुझे एक बात याद आई
कि एक आदमी के पास एक आदमी आया था
उसी आदमी के पास
कि जिसकी फेक्ट्री की भट्टियों में
लोहे की तरह जल-जलकर
गल गया था वह
और बन गया था नर-कंकाल

पापी पेट के लिए
चलता था तो काया कांपती थी,
ठहरता था
तो छाया धूजती थी,
बड़ी कोशिश से बोला
कई दिन का भूखा हूँ
एक दाना भी नसीब नहीं हुआ
उत्तर मिला
"इस फेक्ट्री से मैं तुम्हें सहस्रों दे चुका हूँ
उन्हें जोड़ते तो यह दुर्दशा नहीं होती"
फौलादी वाणी के तीर
आर-पार हो गये,
और थोड़ी ही देर में
सदा के लिए
धरती की गोद में सो गया वह
धरती का पूत

फेक्ट्री का समय हो गया
और अपनी गगन भेदी घर्राहट में
वह रोज की तरह चलने लगी
तभी एक बात और याद आई
कि धर्म का ताज पहिना दिया था
बीसवीं सदी ने उन्हें
तीर्थों में उनके देवालय थे

और अनगिनत थी धर्म सेवायें
घर पर नित्य सदावर्त चलता था
और सरदी में कंबल बँटते थे
कि एक दिन अचानक
साथ ही जन्मा सहोदर
युगों बाद द्वार पर आया
हड्डियों का ढेर सा
पेट और पीठ समन्वय कर चुके थे,
बोला- 'पहिचाना भैया, तुम्हारा भाई हूँ
उत्तर मिला, पहिचाना नहीं मैंने
लो, एक दोना तुम भी ले लो
बात खतम हो गई
सदावर्त चलने लगा
कंबल बँटने लगे।

****

विश्व के अर्थ तंत्रियो से

कौन कहता है कि तुम मानव नहीं हो
देख लेना सिर्फ कोई और भी है।

व्यंजनों से स्वर्ण की थाली भरो
और नखरों से उसे कवलित करो
देख लेना सिर्फ बाहर द्वार पर
ठठरियों की सिस्कियों का शोर भी है।
कौन कहता है कि तुम मानव नहीं हो
देख लेना सिर्फ कोई और भी है।।1।।

राजपथ पर कीमती परिधान में
तुम मचलते ही चलो निज यान में
देख लेना सिर्फ उस फुटपाथ पर
एक नंगी अस्थियों का ढेर भी है।
कौन कहता है कि तुम मानव नहीं हो
देख लेना सिर्फ कोई और भी है।।2।।

गगन चुंबी हो तुम्हारी मंजिलें
पवन को भी पूछकर आना पड़े
दिख सके तो देखना पाताल में
कांपती कोई पवन से झोंपड़ी है।
कौन कहता है कि तुम मानव नहीं हो
देख लेना सिर्फ कोई और भी है।।3।।

पीड़ित वधू

शादी के थोड़े दिनों बाद
मैं थी ससुराल चली भाई
चिल्लाई रोई सिसक-सिसक
नहिं हुई एक भी सुनवाई

आई ससुराल प्रथम ज्यों ही
कुछ लाड़ हुआ कुछ प्यार हुआ
कुछ मीठे गाली गीत हुए
यों मेरा अति सत्कार हुआ

मैंने समझा शुभ कर्मों से
कितना सुन्दर ससुराल मिला
यह सोच पुलक उठती थी मैं
कितना सुन्दर घर बार मिला

कुछ मास दिवस ही बीते थे
पर यहाँ माजरा बदल गया
मेरे रहने सहने से सारे
घर का ही दिल दहल गया

भोजन करने जब एक दिवस
सासू के सम्मुख बैठ गई
वह बोली आग बबूला हो
यह घर की सारी शर्म गई

कितनी निर्लज्ज अरी तू है
इतनी भी तुझमें शर्म नहीं
लेकर सीधी सी थाली तू
मेरे ही सम्मुख बैठ गई

मुँह फेर तनिक बैठी होती
यह रीति हमारे घर की है
कुछ धीरे-धीरे बोला कर
बिल्कुल ही बेपरदे की है

आ गये ससुर साहब तब ही
फिर से ज्वालामुखी भभक उठा
कैसी दुखियारी बहू मिली
मेरा तो सारा नाक कटा

फिर और भभक कर बोली वह
तुम भी इंसान कहाते हो
यह कैसी बहू उठा लाये
क्यों मेरा जीव जलाते हो

कुछ देख भाल तो की होती
मेरी छाती पर शूल हुई
मैंने काले तिल चाबे हैं
हा! मेरी ही यह भूल हुई

हम भी जब बिल्कुल छोटी थीं
ससुराल चली तब आई थी
हमने तो कभी यहाँ आकर
नहिं ऐसी धूम मचाई थी

उठती थी रोज अँधेरे में
सोती थी बारह बजे रात
फिर भी थोड़ी सी गलती पर
पड़ते थे घूँसे और लात

घूँघट में ही रो लेती थी
भोजन भी घूँघट में होता
भीतर घूँघट बाहर घूँघट
सब जीवन घूँघट में बीता

धूएँ से आखें फूट गई
अत्यन्त पसीना चलता था
मुझ जैसी आज लजालू का
पर कभी न घूँघट खुलता था

भीषण घट्टी की मूँठ पकड़
मैं उससे झूमा करती थी
सर्दी हो गर्मी या वर्षा
घंटों ही लूमा करती थी

इसी बीच ननद की बच्चों की
भी झाड़ा करती थी टट्टी
फिर भी सब घर की क्रोध आग
की जलती रहती थी भट्टी

आवाज किसी की सुनने में
यदि थोड़ी सी भी देर हुई
तो सास ननद के डंडों से
अविलंब उसी क्षण ढेर हुई

ना कुछ चीजो के लिए सभी
का मुँह ताकना पड़ता था
बच्चे-बच्चे के इंगित पर ही
मुझे नाचना पड़ता था

सारे ही घर की यह महफिल
जी भरकर माल उड़ाती थी
कुछ भाग मुझे यदि मिल जाता
तो हर्षित होकर खाती थी

प्रिय सास बोलती थी मैने
पढ़ने का कभी न नाम लिया
देखो तो इसी पढ़ाई ने
दुनियाँ का सत्यानाश किया

समझाया बीसों बार इसे
पर सुनती मेरी एक नहीं
यह लड़का है या लड़की है
पढ़ते आती कुछ शर्म नहीं

घंटों मंदिर में रहती है
फिर दिन भर पढ़ती रहती है
पति का भी लेती नाम अहो
निर्लज्ज ढीठ यह कैसी है

यह शिक्षित घर की बातें हैं
ये है आदर्श सास मेरी
जो केवल मेरी चिंता में
दिन रात लगाती है फेरी

जेलों की तंग कोठरी सम
घर के कोने में रहती हूँ
अत्याचारी दल की पीड़ा
मैं बेबस निर्मम सहती हूँ

यह है समाज की दशा
आप कुछ सोचो और विचार करो
अबलाओं के इस संकट का
संहार करो उद्धार करो

दारिद्र्य एवं वैभव की झाँकी

निठुर नयनों से कभी जब
देखाता हूँ मैं बिचारे
नग्न सूखी हड्डियों को
पड़ी सड़कों के किनारे ।।1।।

उधर काली सी निशा में
खेत को जाता कृषक है
कड़कती है बिजलियाँ पर
हृदय उसका वज्र सम है।।2।।

घोर वर्षणा से घनों के
खेत है जलमग्न सारा
कलपता है कृषक हत्यारे!
विधि यह न्याय तेरा ।।3।।

ठोक मस्तक हाय! मानव
हृदय में ही कह रहा है
हाय! नवअंकुर भरा सब
खेत ही चौपट हुआ है।।4।।

अर्धनग्ना नारि झोंपड़ी में
अरे शिशु को सुलाती
कलपते भूखे शिशु को
शुष्क स्तन माता पिलाती।।5।।

सिहर उठती कल्पना है
लेखनी भी काँपती है
नारि की लज्जा अरे!
क्षत झोंपड़ी से झांकती है।।6।।

प्राण रोटी में छिपे
काया मृतक सी सो रही है
ठोकरों से छिन्न मस्तक
रक्त सरिता बह रही है।।7।।

सोचता हूँ मैं अरे! मानव
सभी कहते इसे हैं
चूसता जो रक्त मानव ही
अरे कहते उसे हैं।।8।।

अर्ध निशा है सो रहा है
विश्व भर का वायुमण्डल
कर रहा योगी वनों के
निर्जनों में आत्मसाधन।।9।।

उधर मधु नुपूर ध्वनि में
मद्य प्याली बज रही है
हँस रही महफिल महल की
नग्न जनका नच रही है।।10।।

वासना के भ्रष्ट पथ में
विश्व का कल्याण कैसा
रक्त शोषण है जहाँ तहँ
विश्व प्रेम विधान कैसा।।11।।

विषमता के गर्त में
मानव स्वयं को भूलता है
भूलता मातृत्व को
भातृत्व को भी भूलता है।12।।

विश्व में वैषम्य का जब
पूर्ण रूप अभाव होगा
वासना का साधना में
पूर्ण अन्तर्भाव होगा।।13।।

शान्ति सरिता तब बहेगी
भावना मेरी यही है
कामना मेरी यही है
साधना मेरी यही है।।14।।

कुमारी की अभिलाषा

विषय वासना की अगर तृप्ति चाहूँ
नगर में अनेकों पुरुष श्वान भी हैं
मुकुट रत्न वेष्ठित अगर शीश चाहूँ
मिला रूप लावण्य वरदान भी है
पुरुष-वासना का बनूँ ना खिलौना
अगर दैव से योग हो भी पती का
स्वयं भी तिरे और मुझे भी जो तारे
बनूँ उस पुरुष की चरण-चंचरीका।